प्रकाशक,
नाथूराम प्रेमी,
मंत्री, माणिकचन्द्र-जैनग्रन्थमाला,
हीराबाग, मुंबई नं. ४



मुद्रक,
चिंतामणि सखाराम देवल,
'बम्बईवैभव प्रेस,' सर्व्हेंट्स ऑफ इंडिया,
सोसायटीज् होम, सँढर्स्ट रोड,
गिरगाव-बम्बई

ग्रन्थ-परिचय।

इस संग्रहमें प्रायश्चित्त-विषयक चार ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं। अभी तक इस विषयका कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ था और न इस विषयके हस्तलिखित ग्रन्थ ही सर्वत्र सुलभ हैं। अत एव जैनधर्मके जिज्ञासुओंके लिए यह संग्रह बिल्कुल ही अपूर्व होगा। इसके द्वारा एक ऐसे विषयकी जानकारी होगी जिससे जैनधर्मके बड़े बड़े विद्वान् भी अपरिचित हैं।

छेदपिण्ड, छेदशास्त्र, प्रायश्चित्त-चूलिका और अकलङ्क-प्रायश्चित्त ये चार ग्रन्थ इस संग्रहमें हैं। 'छेद' शब्द प्रायश्चित्तका ही पर्यायवाची है।

१-छेदपिण्ड।

यह ग्रन्थ प्राकृतमें है। इसकी संस्कृतच्छाया श्रीयुत पं० पन्नालालजी सोनी द्वारा कराई गई है। ग्रन्थके अन्तकी गाथा (नं० ३६०) के अनुसार इसका गाथापरिमाण ३३३ और श्लोक (अनुष्टुप्) परिमाण ४२० होना चाहिए, परन्तु वर्तमान ग्रन्थकी गाथासंख्या ३६२ है। जान पड़ता है कि उक्त ३६० नम्बरकी गाथाका पाठ लेखकोंकी कृपासे कुछ अशुद्ध हो गया है। उसमें 'तेत्तीसुत्तर,' की जगह 'बासट्ठित्तर,' या इसीसे मिलता जुलता हुआ कोई और पाठ होना चाहिए। क्यों कि ३२ अक्षरोंके श्लोकके हिसाबसे अब भी इसकी श्लोकसंख्या ४२० के ही लगभग है और ३३३ गाथाओंके ४२० श्लोक हो भी नहीं सकते हैं। अन्यान्य प्रतियोंके देखनेसे इस शंकाका संशोधन हो जायगा।

इस ग्रन्थका संशोधन दो प्रतियों परसे किया गया है, एक जयपुरके पाटोदीके मन्दिरकी प्रतिपरसे—जो प्रायः शुद्ध है—और दूसरी 'डा० भाण्डारकर-ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट' पूनेकी प्रतिपरसे—जो बहुत ही अशुद्ध है। ग्रन्थके छप चुकने पर श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी कृपासे हमें [illegible] भी एक प्रति मिली जो उन्होंने किसीसे लिखा कर भेजी थी। परन्तु वह बहुत ही अशुद्ध लिखी गई है, इस कारण उससे कोई सहायता नहीं ली जा सकी।

यह ग्रन्थ इन्द्रनन्दि-योगीन्द्रका [illegible] है,

परन्तु अनेक पुस्तकालयोमे यह स्वतंत्र रूपसे भी मिलता है । इसके कर्ता इन्द्रनन्दि योगीन्द्र है, जो संभवतः नन्दिसंघके आचार्य थे । यह नहीं मालूम हो सका कि उनके गुरुका क्या नाम था और वे निश्चय रूपसे कब हुए हैं ।

अय्यपार्य नामके एक विद्वान्ने शकसंवत् १२४१ (शाकाद्वे विधुवार्धिनेत्रहिमगौ सिद्धार्थसवत्सरे) में ' जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय ' नामका संस्कृत ग्रन्थ बनाया है । उसकी प्रशस्तिमें लिखा है.—

वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसंभाषितो,
य पूर्व गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जित ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धिस्तत',
तेभ्यः स्वाहृत्सारमध्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥

अर्थात् वीराचार्य, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनन्दि, इन्द्रनन्दि, आशाधर, हस्तिमल्ल और एकसन्धिके ग्रन्थोंसे सार भाग लेकर मैंने यह पूजाक्रम रचा है । इससे मालम होता है कि अय्यपार्यसे पहले उक्त आचार्योंके ऐसे ग्रन्थ वर्तमान थे जिनमे पूजाविषयक विधान थे अथवा जो केवल पूजाविषयक ही थे और उनमे इन्द्रनन्दिका भी कोई पूजाग्रन्थ था । और ऐसी अवस्थामें इन्द्रनन्दिका समय शक सवत् १२४१ अर्थात् विक्रमसवत् १३७६ के पहले निश्चित होता है ।

यह छेदपिण्ड जिस इन्द्रनन्दिसंहिताका एक भाग है, उसमें भी एक अध्याय पूजाविषयक है और उसका नाम पूजाप्रक्रम है । इससे यही खयाल होता है कि अय्यपार्यने जिनका उल्लेख किया है वे यही इन्द्रनन्दि होंगे । परन्तु इसी इन्द्रनन्दिसहिताके दायभाग प्रकरणकी अन्तिम गाथाओंसे इस विषयमे कुछ सन्देह हो जाता है । वे गाथायें ये है —

पुव्वं पुज्जविहाणे जिणसेणाइवीरसेणगुरुजुत्तइ ।
पुज्जस्सयाय (?) गुणभद्दसूरिहिं जह तहुद्दिट्ठा ॥ ६६ ॥
वसुणंदि-इंदणंदि य तह य मुणी एयसंधि गणिनाहं (हिं)
रचिया पुज्जविही या पुव्वक्कमदो विणिद्दिट्ठा ॥ ६४ ॥
गोयम-समतभद्द य अयलंक सु माहणंदिमुणिणाहिं ।
वसुणंदि-इंदणंदिहिं रचिया सा संहिता पमाणाहु ॥ ६५ ॥

संहिताकी जिस प्रतिमें हमने ये गाथायें लिखी हैं वह बहुत ही अशुद्ध है और इस कारण यद्यपि इनसे पूरा पूरा और स्पष्ट अर्थावबोध नहीं होता है, फिर भी ऐसा मालूम होता है कि इस इन्द्रनन्दिसंहितासे भी पहले कोई इन्द्रनन्दिसंहिता थी, जिसे इस संहिताके कर्त्ता प्रमाण माननेको कहते हैं और इन्द्रनन्दिका बनाया हुआ कोई पूजाग्रन्थ भी था। यदि यह ठीक है और हमारे समझनेमें कोई भ्रम नहीं है तो फिर छेदपिण्डके कर्त्ताका समय अय्यपार्यके पहले नहीं माना जा सकता।

इन गाथाओंमें वसुनन्दि, एकसन्धि, और माघनन्दिका भी नाम आया है। इनमेंसे वसुनन्दिका समय विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके लगभग निश्चित किया जा चुका है और एकसन्धि वसुनन्दिसे भी कुछ पीछे हुए हैं। अब रहे माघनन्दि, सो यदि वे कुन्दकुन्दाचार्यसे पहले कहे जानेवाले सुप्रसिद्ध माघनन्दि आचार्य नहीं हैं और दूसरे माघनन्दि हैं जिन्होंने माघनन्दिश्रावकाचार नामक संस्कृत-कनडी ग्रन्थकी रचना की है और जिनकी बनाई हुई एक संहिताका भी उल्लेख स्व० बाबा दुलीचन्दजीने अपनी ग्रन्थसूचीमें किया है, तो उनका समय कर्णाटक-कविचरित्रके कर्त्ताने वि० संवत् १३१७ निश्चय किया है और ऐसी दशामें छेदपिण्डके कर्त्ताका समय उनसे पीछे विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके बाद मानना होगा। परन्तु जब तक यह पूर्णरूपसे निश्चय न हो जाय कि कर्णाटक-कविचरित्रके कर्त्ताने जिनका समय निश्चित किया है उन्हींका उल्लेख [illegible] उक्त गाथाओंमें है, तब तक इस पिछले समय पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता। फिर भी यह बात तो निःसन्देह कही जा सकती है कि छेदपिण्डके कर्त्ता विक्रमकी १३ वीं शताब्दिके पहलेके तो कदापि नहीं हैं।

जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय और इन्द्रनन्दिसंहिताके पूर्वोक्त श्लोकों और गाथाओंमें जिन जिन आचार्योंका उल्लेख है, उनमेंसे कई एक आचार्योंके पूजा और संहिता-ग्रन्थोंका अस्तित्व अब तक है, ऐसा स्वर्गीय बाबा दुलीचन्दजीकी संस्कृत ग्रन्थ-सूचीसे मालूम होता है। यह सूची उन्होंने जेठ सुदी [illegible] रविवार संवत् १९[illegible]४ की

---

१ देखो जैनहितैषी भाग १२, पृ० १९२।

२ जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय नामक ग्रन्थ भी अय्यपार्यका बनाया हुआ है। यह माणिकचन्द्रग्रन्थमालामें छप रहा है।

लिखी हुई प्रतिपरसे नकल की थी। हम नहीं कह सकते कि यह सूची कहाँ तक प्रामाणिक है; फिर भी सुना गया है कि बाबाजीने जगह जगहके ग्रन्थभाण्डारोको स्वयं देखकर इसे तैयार किया था। कई ग्रन्थोंके नामके साथ यह भी लिखा है कि उक्त ग्रन्थ अमुक जगह मौजूद है।

१ वीरसेनस्वामी ... पूजाकल्प।
२ वसुनन्दिस्वामी ... संहिता।
३ माघनन्दि ... ... संहिता (वृन्दावनके घर है)।
४ जिनसेन ... ... पूजाकल्प, पूजासार।
५ इन्द्रनंदि ... ... पूजाकल्प (संस्कृत), संहिता।
६ गुणभद्र ... ... पूजाकल्प।
७ देवनन्दि (पूज्यपाद)... पूजाकल्प।
८ एकसन्धि ... ... पूजाकल्प।
९ हस्तिमल्ल ... ... गणधरवलय-पूजाकल्प।

इनमेंसे वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र और पूज्यपादके पूजाविषयक स्वतंत्र ग्रन्थोंका उल्लेख अभी तक किसी भी ग्रन्थमें देखनेमें नहीं आया है। इस लिए इस बातकी बड़ी भारी आवश्यकता है कि उक्त ग्रन्थ संग्रह किये जायँ और उनका अच्छी तरह स्वाध्याय किया जाय। संभव है कि वीरसेन, जिनसेन आदि नामोंके धारक अन्य आचार्योंने इनकी रचना की हो। क्योंकि हमारे यहाँ एक नामके अनेक आचार्य होते रहे हैं।

इन्द्रनन्दि नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं। उनमेंसे एक तो वे हैं जिनका उल्लेख गोम्मटसार कर्मकाण्डकी ३९६ वीं गाथामें किया गया है और जिनके पास सिद्धान्तग्रन्थोंका श्रवण करके कनकनन्दि मुनिने 'सत्त्वस्थान' की रचना की है।—

वर इंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिमुणिणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥ ३९६॥

गोम्मटसारके कर्ताका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दि है, अतएव ये इन्द्रनन्दि लगभग इसी समयके आचार्य हैं।

श्रवणबेल्गोलकी मल्लिषेणप्रशस्तिमें लिखा है:—

> दुरितग्रहनिग्रहाद्भयं यदि भो भूरिनरेन्द्रवन्दितम् ।
> ननु तेन हि भव्यदेहिनो भजत श्रीमुनिमिन्द्रनन्दिनम् ।

यह प्रशस्ति शक संवत् १०५० (वि० सं० ११८५) में उत्कीर्ण की गई है, अतः संभव है कि गोम्मटसारोल्लिखित इन्द्रनन्दि, और इस प्रशस्तिमें जिनकी प्रशंसा की गई है वे इन्द्रनन्दि, दोनों एक ही हो।

'श्रुतावतार' के कर्ता भी इन्द्रनन्दि नामके आचार्य हैं। हमारा अनुमान है कि ये भी गोम्मटसार और मल्लिषेणप्रशस्तिके इन्द्रनन्दिसे अभिन्न होंगे। क्यों कि श्रुतावतारमें वीरसेन और जिनसेन आचार्य तककी ही सिद्धान्त-रचनाका उल्लेख है। यदि वे नेमिचन्द्र आचार्यसे पीछे हुए होते, तो बहुत संभव है कि गोम्मटसारका भी उल्लेख करते।

नीतिसार (समयभूषण) के कर्ता भी इन्द्रनन्दि नामके आचार्य हैं, परन्तु वे गोम्मटसारके कर्तासे पीछे हुए हैं, क्यों कि उन्होंने नीतिसारके ७० वें श्लोकमें नेमिचन्द्रका उल्लेख किया है (प्रभाचन्द्रो नेमिचन्द्र इत्यादि मुनिसत्तमैः)। अत एव वे पहले इन्द्रनन्दि तो नहीं हो सकते। बहुत संभव है कि वे और इस इन्द्रनन्दिसंहिताके कर्ता एक ही हों।

२–छेदशास्त्र।

इसका दूसरा नाम 'छेदनवति' भी है। क्यों कि इसमें नवति या ९० गाथायें है। यह भी प्राकृतमें है। इसके साथ एक छोटीसी वृत्ति भी है। परन्तु इससे न तो मूलग्रन्थके कर्ताका नाम मालूम हो सकता है और न वृत्तिके कर्त्ताका। और ऐसी दशामें इसके बननेका समय तो निश्चित ही क्या हो सकता है। इस ग्रन्थका भी सम्पादन और संशोधन केवल एक ही प्रतिके आधारसे हुआ है और यह प्रति बम्बईके तेरहपंथी मन्दिरका वह प्राचीन गुटका है जो अतिशय जीर्ण शीर्ण गलितपृष्ठ होकर भी प्रायः शुद्ध है और हमारे अनुमानसे जो ४००–५००

---

(१) श्रुतावतारके मुद्रित पाठमें जिनसेनके बदले 'जयसेन' है।

(२) मुद्रित ग्रन्थ ९४ गाथाओंमें है।

वर्ष पहलेका लिखा हुआ है। इसकी दूसरी प्रति प्रयत्न करनेपर भी कहीं प्राप्त न हो सकी।

इसकी भी संस्कृतच्छाया पं० पन्नालालजी सोनीद्वारा कराई गई है।

३-प्रायश्चित्त-चूलिका[1]।

यह ग्रन्थ संस्कृतमें है और सटीक है। मूल ग्रन्थकी श्लोकसंख्या १६६ है। यह भी केवल एक ही प्रतिके आधारसे छपाया गया है और वह प्रति पूनेके 'भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिटयूट' की है जो प्रायः अशुद्ध है और संवत् १९४२ की लिखी हुई है। दूसरी प्रति नहीं मिल सकी।

इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें लिखा है.—

यः श्रीगुरूपदेशेन प्रायश्चित्तस्य संग्रहः।
दासेन श्रीगुरोर्हब्धो भव्याशयविशुद्धये॥ १
तस्यैषा ऽनूदिता वृत्तिः श्रीनन्दिगुरुणा हि सा।
विरुद्धं यदभूदत्र तत्क्षाम्यतु सरस्वती॥ २

इससे मालूम होता है कि मूलग्रन्थके कर्ता श्रीगुरुदास हैं और वृत्तिके कर्ता श्रीनन्दिगुरु हैं। मूलकर्ताका नाम बिल्कुल अपरिचितसा और विलक्षणसा मालूम होता है। बल्कि हमें तो इसके नाम होनेमें सन्देह होता है। 'दासेन' और श्रीगुरोः' ये दो पद अलग अलग पड़े हुए हैं और इनका अर्थ यही होता है, कि श्रीगुरुके दासने बनाया। आश्चर्य नहीं जो टीकाकारको मूलकर्ताका नाम न मालूम हो और उन्होंने साधारण तौरसे यह लिख दिया हो कि यह श्रीगुरुके एक दासका बनाया हुआ है और मैं इसकी वृत्ति रचता हूँ। और यदि 'श्रीगुरुदास' यह नाम ही है, तो हम अभी तक उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते हैं। इस नामके किसी भी आचार्यका नाम देखने सुननेमें नहीं आया। टीकाके कर्ता श्रीनन्दि गुरु हैं।

धारावीश महाराज भोजके समयमें श्रीचन्द्र नामके एक विद्वान् हो गये हैं।

---

(१) परिकर्म-सूत्र-पूर्वानुयोग-पूर्वगत-चूलिका पञ्च। स्युर्दृष्टिवादभेदा —
—अभिधानचिन्तामणि।

उनका 'पुराणसार' नामका एक ग्रन्थ है। वह विक्रम संवत् १०७० का बना हुआ है। उसकी प्रशस्तिमें उन्होंने लिखा है कि सागरसेन नामक आचार्यसे महापुराण पढ़कर श्रीनन्दिके शिष्य मुनि श्रीचन्द्र मुनिने यह ग्रन्थ बनाया। इसी तरह आचार्य वसुनन्दिने अपने श्रावकाचारमें भी एक श्रीनन्दिका उल्लेख किया है जो उनकी गुरुपरम्परामें थे।—श्रीनन्दि-नयनन्दि-नेमिचन्द्र और वसुनन्दि। वसुनन्दिका समय बारहवीं शताब्दि है, अतः उनके दादा गुरुके गुरु अवश्य ही उनसे १०० वर्ष पहले हुए होंगे और इस तरह संभवतः श्रीचन्द्रके गुरु और वसुनन्दिके परदादा-गुरु एक ही होंगे।

यदि प्रायश्चित्तटीकाके कर्त्ता श्रीनन्दिगुरु और श्रीचन्द्रके गुरु श्रीनन्दि एक ही हों, तो कहना होगा कि यह टीका विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें बनी हुई है। और ऐसी दशामें मूल ग्रन्थ उससे भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

४-प्रायश्चित्त ग्रन्थ।

यह ग्रन्थ श्रीयुक्त पं० लालारामजी शास्त्रीकी लिखी हुई एक प्रतिके आधारसे ही छपाया गया है। इसकी भी कोई दूसरी प्रति नहीं मिल सकी। इसमें केवल श्रावकोंके प्रायश्चित्तका निरूपण है और इसकी श्लोकसंख्या ८८ है। इसमें कोई प्रशस्ति आदि नहीं है। केवल आदि और अन्तमें इसके कर्त्ताका नाम श्रीमद्भट्टाकलंकदेव बतलाया गया हुआ है परन्तु जान पड़ता है कि ये तत्त्वार्थ-राजवार्तिक आदि महान् ग्रन्थोंके कर्त्ता अकलंकदेवसे भिन्न कोई दूसरे ही विद्वान् होंगे और आश्चर्य नहीं जो अकलंक-प्रतिष्ठापाठके कर्त्ता ही इसके रचयिता हों। यह निश्चय हो चुका है कि अकलंकप्रतिष्ठापाठके कर्त्ता १६ वीं शताब्दिके बाद हुए हैं। उन्होंने आदिपुराण, ज्ञानार्णव, एकसन्धिसंहिता, सागार-धर्मामृत, आशाधर-प्रतिष्ठापाठ [illegible] त्रिवर्णाचार, नेमिचन्द्र-प्रतिष्ठापाठ आदि

(१) बाबा दुलीचन्दजीकी सूचीमें श्रीनन्दि मुनिके एक '[illegible]' नामक ग्रन्थका उल्लेख है। उसमें यह लिखा है कि यह ग्रन्थ [illegible] में बना है।

(२) जैनहितैषी भाग १४ पृ० १९८-९९ में बाबू जुगलकिशोरजीने इस विषय पर एक विस्तृत नोट दिया है।

(३) देखो जैनहितैषी भाग १२, पृ० ४२३-२६।

ग्रन्थोंके बहुतसे पद्य अपने ग्रन्थमें दिये हैं। अत एव वे इन सब ग्रन्थकर्ताओंसे पीछेके विद्वान् हैं, यह कहनेमें कोई संकोच नहीं हो सकता।

इस ग्रन्थकी रचना-शैलीसे भी मालूम होता है कि न तो यह उतना प्राचीन ही है और न भट्ट अकलङ्कदेवकी रचनाओंके समान इसमें कोई प्रौढता ही है। इसका 'मोक्कला' शब्द—जो बीसों जगह आया है—संस्कृत नहीं किन्तु देशभाषाका है और भद्रबाहु-संहिता (खण्ड १, अ० १०) में भी यह 'मोकला' रूपमें व्यवहृत हुआ है। गुजराती और मारवाडीमें 'मोकला' शब्द विपुलता या अधिकताका वाचक है। लघु अभिषेक और मोकला अर्थात् बड़ा अभिषेक। कर्नाटक देशके भट्ट अकलङ्कदेवकी रचनामें इस शब्दका प्रयोग असंगत ही दिखता है। और भी ऐसी कई बातें हैं जिनसे इसकी अर्वाचीनता प्रकट होती है। जैसे अनेक अपराधोंके दण्डमें गौओंका दान और ताम्बूलदान। जहाँ तक हम जानते हैं अनेक आचार्योंने 'गौ-दान' का निषेध किया है। इसके सिवाय इस ग्रन्थका पहले तीन प्रायश्चित्त-ग्रन्थोंके साथ मतभेद भी मालूम होता है, उदाहरणके लिए इसका यह श्लोक देखिए—

> जननीतनुजादीनां चाण्डालादिस्त्रियामपि।
> संभोगे सति शुद्ध्यर्थं पंचाशदुपवासकाः॥

इसके अनुसार माता पुत्री चाण्डाली आदिके साथ व्यभिचार करनेवालेको पंचाशत् उपवास करना चाहिए, परन्तु अन्य तीनों प्रायश्चित्त-ग्रन्थोंमें इस पापका प्रायश्चित्त ३२ उपवास लिखा है। इसी तरह अन्यान्य पापोंके प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें भी मतभेद है। विद्वानोंको इस मतभेद पर भी खास तौरसे विचार करना चाहिए।

अन्तमें मैं इतना और कहकर अपने निवेदनको समाप्त करूँगा कि ग्रन्थ-कर्ताओंके समय-निर्णयका मैंने जो यह प्रयत्न किया है वह अपनी छोटीसी बुद्धिके अनुसार किया है। बहुत संभव है कि मेरे अनुमान गलत हों और ऐसी दशामें मैं अपनी भूलोंको सुधारनेके लिए सदा तत्पर हूँ। परन्तु कोई महाशय यह समझ लेनेकी कृपा न करें कि मैं जान बूझकर किसीको प्राचीन या अर्वाचीन ठहरानेका प्रयत्न करता हूँ। मैं ऐसे प्रयत्नको बहुत ही घृणित समझता हूँ।

बम्बई,
आषाढ़ सुदी ३
सं० १९७८ वि०।

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी।

माणिकचन्द्रजैनग्रन्थमाला।

यह ग्रन्थमाला स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द हीराचन्दजीके स्मरणार्थ और जैनसाहित्यके उद्धारार्थ निकाली गई है।

इसमें दिगम्बर जैन सम्प्रदायके अलभ्य और दुर्लभ संस्कृत प्राकृत ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं।

इसके द्वारा प्रकाशित हुए ग्रन्थ केवल लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं, जिससे उनका मिलना सर्व साधारणके लिए सुलभ हो जाय।

अभीतक इस मालामें १८ ग्रन्थ निकल चुके हैं। यदि धर्मात्मा भाइयोंसे बराबर सहायता मिलती रही तो इसके द्वारा सैकड़ों अपूर्व ग्रन्थोंका उद्धार हो जायगा।

इसके ग्रन्थोंको खरीदकर पढ़ना, मन्दिरोंमें स्थापित करना और असमर्थ विद्वानोंको बाँटना, यह प्रत्येक जैनीका कर्तव्य होना चाहिए।

ब्याह शादी उत्सव, प्रतिष्ठा मेला आदि प्रत्येक मौके पर इस ग्रन्थमालाको सहायता देनी और दिलानी चाहिए।

जो धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी कमसे कम २०० प्रतियाँ खरीद लेते हैं, उनका चित्र और स्मरणपत्र उस ग्रन्थकी तमाम प्रतियोंमें छपवा दिया जाता है।

सौ रुपयेसे अधिक इकट्ठा सहायता करनेवालोंको मालाके सब ग्रन्थ भेटमें दिये जाते हैं।

–मंत्री।

मणिकचन्द दि० जैन ग्रन्थमालामें प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची।

१	लघीयस्त्रयादिसंग्रह (लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्ति, लघुसर्वज्ञसिद्धि, बृहत्सर्वज्ञसिद्धि)	।=)
२	सागारधर्मामृत सटीक	।≡)
३	विक्रान्तकौरवीय नाटक	।=)
४	पार्श्वनाथचरित्र	॥)
५	मैथिलीकल्याण नाटक	।)
६	आराधनासार सटीक	।)॥
७	जिनदत्तचरित	।)॥
८	प्रद्युम्नचरित	॥)
९	चारित्रसार	।=)
१०	प्रमाणनिर्णय	।-)
११	आचारसार	।=)
१२	त्रैलोक्यसार सटीक	१॥)
१३	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह (तत्त्वानुशासन, इष्टोपदेश सटीक, नीतिसार, श्रुतावतार, श्रुतस्कन्ध, वैराग्य-मणिमाला, ढाढसीगाथा, तत्त्वसार, ज्ञानसार, मोक्षपंचाशिका, अध्यात्मतरंगिणी, पात्रकेसरी-स्तोत्र, अध्यात्माष्टक, द्वात्रिंशतिका)	॥।=)
१४	अनगारधर्मामृत सटीक	३॥)
१५	युक्त्यानुशासन सटीक	॥।-)
१६	नयचक्रसंग्रह (आलापपद्धति, नयचक्र द्रव्य—स्वभावप्रकाशक नयचक्र)	॥।≡)
१७	षट्प्राभृतादि संग्रह	३)
१८	प्रायश्चित्त–संग्रह	

ग्रन्थ-सूची।

मणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमालामें प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची ।

१	लघीयस्त्रयादिसंग्रह (लघीयस्त्रयतात्पर्यवृत्ति, लघुसर्वज्ञसिद्धि, बृहत्सर्वज्ञसिद्धि)	।=)
२	सागारधर्मामृत सटीक	।≡)
३	विक्रान्तकौरवीय नाटक	।=)
४	पार्श्वनाथचरित्र	॥)
५	मैथिलीकल्याण नाटक	।)
६	आराधनासार सटीक	।)॥
७	जिनदत्तचरित	।)॥
८	प्रद्युम्नचरित	॥)
९	चारित्रसार	।=)
१०	प्रमाणनिर्णय	।-)
११	आचारसार	।=)
१२	त्रैलोक्यसार सटीक	१॥।)
१३	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह (तत्त्वानुशासन, इष्टोपदेश सटीक, नीतिसार, श्रुतावतार, श्रुतस्कन्ध, वैराग्य-मणिमाला, ढाटसीगाथा, तत्त्वसार, ज्ञानसार, मोक्षपंचाशिका, अध्यात्मतरंगिणी, पात्रकेसरी-स्तोत्र, अध्यात्माष्टक, द्वात्रिंशतिका)	॥।=)
१४	अनगारधर्मामृत सटीक	२॥)
१५	युक्त्यनुशासन सटीक	॥।-)
१६	नयचक्रसंग्रह (आलापपद्धति, नयचक्र द्रव्य—स्वभावप्रकाशक नयचक्र)	॥।≡)
१७	षट्प्राभृतादि संग्रह	३)
१८	प्रायश्चित्त–संग्रह	

आद्यग्रन्थत्रयाणां प्रकरणसूची।

आद्यग्रन्थत्रयाणां प्रकरणसूची ।

AUCARCHAND BHAIRODAN SETHIA,
JAIN LIBRARY.:
BIKANER, RAJPUTANA.



नमो वीतरागाय ।

प्रायश्चित्तसंग्रहः ।



श्रीन्द्रनन्दियोगीन्द्र-विरचितं

छेदपिण्डम् ।



विच्छिण्णकम्मबंधे णिच्छयणयमस्सिऊण अरहंते ।
वोच्छामि छेदपिंड पायच्छित्तं पणमिऊणं ॥ १ ॥

विच्छिन्नकर्मबंधान् निश्चयनयमाश्रित्य अर्हत ।
वक्ष्यामि च्छेदपिण्डं प्रायश्चित्तं प्रणम्य ॥

रिसिसावयमूलुत्तरगुणादिचारे पमाददप्पेहिं ।
जादे पायच्छित्तं णिसुणह कमसो जहाजोग्गं ॥ २ ॥

ऋषिश्रावकमूलोत्तरगुणातिचारे प्रमाददर्पाभ्यान् ।
जाते प्रायश्चित्तं निशृणुत क्रमशो यथायोग्यन ॥

पायच्छित्तं छेदो मलहरणं पावणासणं सोही ।
पुण्ण पवित्तं पावणमिदि पायच्छित्तनामाइं ॥ ३ ॥

प्रायश्चित्तं छेदो मलहरणं पापनाशन शुद्धि. ।
पुण्य पवित्रं पावनमिति प्रायश्चित्तनामानि ॥

मूलगुण संठाण गुरुमासं तह य पंचकल्लाणं ।
मासियमिदि पज्जाया णायव्वा पंचकल्लाणा ॥ ४ ॥

मूलगुण सस्थानं गुरुमास तथा च पचकल्याण ।
मासिकमिति पर्याया ज्ञातव्या पचकल्याणाः ॥

णिव्वियडी पुरिमंडलमायामं एयठाण खमणमिदि ।
कल्याणमेगमेदेहिं पंचहिं पंचकल्लाणं ॥ ५ ॥

निर्विकृतिः पुरिमण्डल आचाम्ल एकस्थानं क्षमणमिति ।
कल्याणमेक एतैः पंचभिः पंचकल्याण ॥

उववासपंचए वा आयंविलपचए व गुरुमासा दे ।
निव्वियडिपंचए वा अवणीदे होदि लहुमासं ॥ ६ ॥

उपवासपंचके वा आचाम्लपचके वा गुरुमासा. .. ॥
निर्विकृतिपंचके वा अपनीते भवति लघुमासः ॥

णाऊण पुरिससत्त चित्तं वयसथिराथिरत्तं च ।
एकम्मि य कल्लाणे अवणीदे भिण्णमासा से ॥ ७ ॥

ज्ञात्वा पुरुपसत्व चित्तं व्रतस्थिरास्थिरत्वं च ।
एकस्मिन् च कल्याणे अपनीते भिन्नमासाः तस्य ॥

आयामं सतिभाग दो दो णिव्वियडि एयठाणाइं ।
पुरिमंडलेगभत्ता चउरो वारस विउस्सग्गे ॥ ८ ॥

आचाम्ल सत्रिभागं द्वे द्वे निर्विकृती एकस्थानानि ।
पुरिमण्डलैकभक्ताः चत्वारः द्वादश व्युत्सर्गाः ॥

अट्ठसयणमोक्कारा उववासो वा हवंति उववासे ।
छट्ठे पुण ते तिउणा छट्ठं वा एगकल्लाणं ॥ ९ ॥

अष्टशतनमस्कारा उपवासो वा भवन्ति उपवासे ।
षष्ठे पुनस्ते त्रिगुणाः षष्ठं वा एककल्याणं ॥

णवपंचणमोक्कारा काउसग्गम्मि होंति एगम्मि ।
एदेहिं बारसेहिं उववासो जायदे एक्को ॥ १० ॥

नवपंचनमस्कारा कायोत्सर्गे भवन्ति एकस्मिन् ।
एतैर्द्वादशभिः उपवासो जायते एकः ॥

आयंबिलम्हि पादूण खमणपुरिमंडले तहा पादो ।
एयट्ठाणे अद्धं णिव्वियडीओ य एमेव ॥ ११ ॥

आचाम्ले पादोनं क्षमणपुरिमण्डले तथा पादः ।
एकस्थाने अर्धं निर्विकृतौ च एवमेव ॥

मज्जारपदप्पमाणं पुढविं सलिलं च चुलुयपरिमाणं ।
दीवसिहामित्तग्गिं करपल्लवजणियय वाउं ॥ १२ ॥

मार्जारपदप्रमाणं पृथिवीं सलिलं च चुलुकपरिमाणं ।
दीपशिखामात्राग्निं करपल्लवजनित वायुम् ॥

मुट्ठिपमाणं हरिदावयवं जो घायए पमादेण ।
पायच्छित्तं तस्स दु एक्केक्को तणुविउस्सग्गो ॥ १३ ॥

मुष्टिप्रमाणं हरितावयवं य घातयेत् प्रमादेन ।
प्रायश्चित्तं तस्य तु एकैकः तनुव्युत्सर्गः ॥

१ इदं वाक्यमूलं ख पुस्तके नास्ति । टीकायामेतदनुसन्धत्ते ।

पइंदियादिचउरिंदियंतजीवे जदा पमादेण ।
दप्पेणुवघादे जो को[1] वि मुणी थूलगुणधारी[2] ॥ १४ ॥

एकेन्द्रियादिचतुरिन्द्रियान्तजीवान् यदा प्रमादेन ।
दर्पेण उपघातयेत् यः कोऽपि मुनिः स्थूलगुणधारी ॥

काउस्सग्गुववासा दायव्वा तस्स पाणगणणाए ।
उत्तरगुणियस्स पुणो इंदियगणणाए दायव्वा ॥ १५ ॥

कायोत्सर्गोपवासा दातव्याः तस्मै प्राणगणनया ।
उत्तरगुणिने पुन इन्द्रियगणनया दातव्याः ॥

अहवा पयत्तअपयत्तचारिणो तह थिरस्स अथिरस्स ।
काओसग्गुववासा इंदियगणणाए पाणगणणाए ॥ १६ ॥

अथवा प्रयत्नापयत्नचारिणो तथा स्थिरस्यास्थिरस्य ।
कायोत्सर्गोपवासा इन्द्रियगणनया प्राणगणनया ॥

बारसछच्चदुतिण्हं इगिबितिचउरिंदियाण मोद्दवणे ।
णियमजुदो उववासो तप्पडिबद्धो तवो अहवा ॥ १७ ॥

द्वादशषट्चतुस्त्रायाणा एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणा मर्दने ।
नियमयुत उपवासः तत्प्रतिबद्धं तपोऽथवा ॥

तिछणवबारसगुणिदाणेयाण घायणे सनियमाइं ।
इगिबितिचदुछट्ठाइं तप्पडिबद्धो तवो अहवा ॥ १८ ॥

त्रिषट्नवद्वादशगुणितानामेकेन्द्रियादीना घातने सनियमानि
एकद्वित्रिचतु.षष्ठानि तत्प्रतिबद्ध तपोऽथवा ॥

---

१ कोइ ख. पुस्तके । २ मूलगुणधारी ख. पुस्तके ।

पण्णारसगुणिदाणं पुण एयाणं घायणे हवे छेदो ।
सप्पडिक्कमणं कल्लाणपंचयं तत्तवो अहवा ॥ १९ ॥

पंचदशगुणितानां पुनः एकेन्द्रियादीनां घातने भवेच्छेदः ।
सप्रतिक्रमणं कल्याणपंचकं तत्तपोऽथवा ॥

एदं पायच्छित्तं अयत्तचारिस्स होइ दायव्वं ।
जत्तेण चरंतस्स खु एदस्सद्धं भणंति परे ॥ २० ॥

एतत्प्रायश्चित्त अयत्नचारिणः भवति दातव्यं ।
यत्नेन चरतः खलु एतस्य अर्धं भणन्ति परे ॥

मूलुत्तरगुणधारी पमादसहिदो पमादरहिदो य ।
एक्केक्को वि थिराथिरभेदेणं होइ दुवियप्पो ॥ २१ ॥

मूलोत्तरगुणधारी प्रमादसहितः प्रमादरहितश्च ।
एकैकोऽपि स्थिरास्थिरभेदेन भवति द्विविकल्पः ॥

तेसिं असण्णिघादे उववासा तिण्णि छट्ठमथ छट्ठं ।
मासिय पणगं ति य तियखमणं छट्ठं लघुमासमिगिवारे ॥२२॥

तेषां असंज्ञिघाते उपवासा त्रय षष्ठं अथ षष्ठं ।
मासिकं पंचकं इति च त्रिक्षमणं षष्ठं लघुमास एकवारे ॥

छट्ठ लहुमास मासिय मूलट्ठाणोववासतिग छट्ठं ।
तह भिण्णमास मासियमिदि कमसो होदि बहुवारे ॥ २३ ॥

षष्ठं लघुमासः मासिकं मूलस्थानं उपवासत्रिकं षष्ठं ।
तथा भिन्नमासः मासिकमिति क्रमशो भवति बहुवारे ॥

१ वलरलु—न. ख. पुस्तके । २ पमदरहिदो पमदसहिदो य. ख. ।

सतरमेदं देयं साण्णिवधे पुण णिरंतरं देयं ।
चदुवारेहि य परदो सव्वत्थ वि होदि मूलखिदी ॥ २४ ॥

सान्तरमेतद् देय सन्निवधे पुनः निरन्तर देयं ।
चतुर्वारेभ्य· च परतः सर्वत्रापि भवति मूलक्षितिः ॥

बालित्थीगोघादे णियदंसणभयवसा समावण्णे ।
तिण्णि य मासा छट्ठ तस्स य अद्धं तदद्धं च ॥ २५ ॥

बालस्त्रीगोघाते निजदर्शनभयवशात्समापन्ने ।
त्रयश्च मासा षष्ठ तस्य च अर्धं तदर्धं च ॥

विरदो व सावओ वा तिविहो जदि संजदस्स उवरिं दु ।
उवयरणादिनिमित्तं अप्पाणं घादए को वि ॥ २६ ॥

विरतो वा श्रावको वा त्रिविध[1] यदि संयतस्योपरि तु ।
उपकरणादिनिमित्त आत्मान घातयेत् कोऽपि ॥

ताण वधे संजादे बारसमासा तहेव छम्मासा ।
तिण्णि य मासा छट्ठं दिवड्ढमासो य दायव्वं[2] ॥ २७ ॥

तेषा वधे सजाते द्वादशमासा तथैव षण्मासाः ।
त्रयश्च मासा षष्ठ द्व्यर्धमासश्च दातव्य. ॥

सेवडयभगववंदगकावालियभोयपमुहपासंडा ।
जदि सजदस्स कस्स वि उवरि विवादादिहेदूहिं ॥ २८ ॥

श्वेतपटकभगववन्दककापालिकभोजप्रमुखपाषण्डा· ।
यदि संयतस्य कस्यापि उपरि विवादादिहेतुभि. ॥

१ उत्तममध्यमभेदेन त्रिविध श्रावक । २ दायव्वा ख. ।

अप्पाणं विणिवायंति तस्स छट्ठं तु होइ छम्मासं।
तद्दिक्खियाण तब्भत्ताण वहे पुणु तदद्धद्धं ॥ २९ ॥

आत्मानं विनिपातयन्ति तस्य षष्ठं तु भवति षण्मासं।
तद्दीक्षितानां तद्भक्तानां वधे पुनः तदर्धार्धं ॥

बंभणघादे अट्ठ य मासा एयंतरेण उववासा।
खत्तियवइस्ससुद्दाण घायणाओ उण तदद्धद्धं ॥ ३० ॥

ब्राह्मणघाते अष्टौ च मासा एकान्तरेण उपवासाः।
क्षत्रियवैश्यशूद्राणां घातनतः पुनः तदर्धार्धं ॥

अट्ठ य छच्चदु दोण्णि य मासा एयंतरेत्ति विंति परे।
दोसु वि उवएसेसु छट्ठं ओदिए अंते ॥ ३१ ॥

अष्टौ च षट् चत्वारः द्वौ च मासा एकान्तरे इति ब्रुवन्ति परे।
द्वयोरपि उपदेशयोः षष्ठ आदिके अन्ते ॥

णियसमयजादिकुलधम्मसुक्कस्सायरणधारयाण वहे।
एसा सुद्धी मज्झिमजहण्णघादे तदद्धद्धा ॥ ३२ ॥

निजसमयजातिकुलधर्मे उत्कृष्टाचरणधारकाणां वधे।
एषा शुद्धिः मध्यमजघन्यघाते तदर्धार्धा ॥

मेसासमहिसखरकरहाजादीगामचउप्पयवहम्हि।
अंतादिछट्ठसहिया मासद्धेयंतरुववासा ॥ ३३ ॥

मेषाश्वमहिषखरकरभाऽजादिग्रामचतुष्पदवधे।
अन्तादिषष्ठसहिता मासार्धा एकान्तरेणोपवासाः ॥

१ तदद्ध क। २ घायणे ख.। ३ तदद्ध क। ४ आदीय अंते च ख.।
५ मेषादिनामग्रामीणां चतुष्पदानां वधे।

[illegible] ।
[illegible] ॥ ३४ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible] पमादजादेण ।
[illegible] ॥ ३५ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥

अण्णे भणंति एवं पायच्छित्तं [illegible] ।
[illegible] पमादजादस्स [illegible] अट्ठमादि ॥ ३६ ॥

अन्ये भणन्ति एतत्प्रायश्चित्तं [illegible] ।
उक्तं प्रमादजातस्य भवति एतस्य [illegible] ॥

अट्ठ य सत्त य छच्चदु उववासा होंति अइमदिठ्ठाण ।
चउरिंदियतेइंदियबेइंदियएइंदियाण वहे ॥ ३७ ॥

अष्टौ च सप्त च षट् चत्वार उपवासा भवन्ति अतिमरता ।
चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियैकेन्द्रियाणां वधे ॥

कोमलहरियतिणंकुरपुंजस्सुवरिं पमाददोसेण ।
पाए पडियम्मि हवे उववासो सप्पडिक्कमणो ॥ ३८ ॥

कोमलहरिततृणाङ्कुरपुंजस्योपरि प्रमाददोषेण ।
पादे पतिते भवेत् उपवासः सप्रतिक्रमणः ॥

१ तद्‌गुण ख. ।

एवं वितिचउरिंदियपुंजाणं उवरि पडियए पाए।
सपडिक्कमण दोण्णि य तिण्णि य चत्तारि उववासा ॥ ३९ ॥

एवं द्वित्रिचतुरिन्द्रियपुंजानां उपरि पतिते पादे ।
सप्रतिक्रमण द्वौ च त्रयश्च चत्वार उपवासाः ॥

सप्पंडयाणमुवरिं पाए पडियम्मि अहव चंकमिए।
कल्लाणियाणमुवरिं पडिकमणं पंच उववासा ॥ ४० ॥

सर्पतामुपरि पादे पतिते अथवा चङ्क्रमिते ।
कल्याणिकानामुपरि प्रतिक्रमणं पंच उपवासा ॥

पढमवद–इति प्रथमव्रत ।

गणिणा चत्तणिहेण व सेसेहिं असण्णिएण केण वि वा।
अप्पम्मि मुसावादे अदिण्णगहणे य अप्पम्मि ॥ ४१ ॥

गणिना त्यक्तनिवहेन वा स्नेहेन असन्निहितेन केनापि वा ।
आत्मनि मृषावादे अदत्तग्रहणे च आत्मनि ॥

विण्णादे अणुकमसो छेदो आलोयणा विउस्सग्गो।
सप्पडिक्कमणो एगो उववासो दोण्णि उववासा ॥ ४२ ॥

विज्ञातेऽनुक्रमशः छेद आलोचना व्युत्सर्गः ।
सप्रतिक्रमण एक उपवास द्वौ उपवासौ ॥

अप्फालिऊण हत्थं पुरदो समयस्स लोयपुरदो वा।
जदि वददि मुसावादं तो सट्ठाणं च मूलखिंदी ॥ ४३ ॥

---

१ गहणम्मि अप्पम्मि । २ अस्या अग्रे ऽयमपि गाथा समुपलभ्यते ख पुस्तके

दम्मसुवण्णादीयं गहिदं जदि मुणदि ससमओ ।
अहवा एय परियत्त लोगो सट्ठाणं च मूलखिदी ॥ १ ॥
द्रमसुवर्णादिक गृहीतं यदि जानाति स्वस्मयः ।
अथवा इत परो लोक संस्थान च मूलक्षितिः ॥

आस्फाल्य दर्भं पुनः समागम्य चोद्गुरो ॥ ।
यदि नश्नि मृगा यदं तत्र संस्थाने च मूर्च्छति ॥

अहवा समक्खअसमक्खउभयत्तिकरणमोसभासिस्स ।
काउस्सग्गो इगिदुतिउववासा सप्पडिक्कमणा ॥ ४४ ॥

अथवा समक्षासमक्षोभयत्रिकरणमृषाभाषिण ।
कायोत्सर्ग एकद्वित्र्युपवासाः सप्रतिक्रमणाः ॥

सुण्णे पच्चक्खे अण्णादे णादे अदत्तगहणम्मि ।
काउस्सग्गो इगिदुत्तिउववासा सप्पडिक्कमणा ॥ ४५ ॥

शून्ये प्रत्यक्षे अज्ञाते ज्ञाते अदत्तग्रहणे ।
कायोत्सर्ग एकद्वित्र्युपवासा सप्रतिक्रमणा ॥

एदं पायच्छित्तं पमाददो एगवारदोसस्स ।
दप्पेण य बहुवार कयस्स पुण पचकल्लाण ॥ ४६ ॥

एतत्प्रायश्चित्तं प्रमादतः एकवारदोषस्य ।
दर्पेण च बहुवारं कृतस्य पुन पचकल्याणं ॥

विदिय तदिय वद–इति द्वितीयं तृतीय व्रत ।

अब्बंभभासिणित्थीअहिलासतदंगफासणे च्छेदो ।
आलोयणा य काउस्सग्गो णियमोववासो य ॥ ४७ ॥

अब्रह्मभाषिण. स्त्र्यभिलापतदङ्गस्पर्शने छेदः ।
आलोचना च कायोत्सर्गः नियमोपवासश्च ॥

१ सो क. । २ ण. क । ३ फासणे स. । ४ सप्रतिक्रमणोपवासश्च ।

दट्ठूण चिंतिदूण य महिलं जस्स पमाददोसेण ।
इंदियखलणं जायदि तस्स तिरत्तं हवइ छेदो ॥ ४८ ॥
दृष्ट्वा चिन्तयित्वा च महिलां यस्य प्रमाददोषेण ।
इन्द्रियस्खलनं जायते तस्य त्रिरात्रं भवति छेदः ॥

जंतारूढो जोणिं अफुसंतो जदि णियत्त विविरत्तो ।
तप्पडिक्कमणुववासो हायव्वो तस्सिमो छेदो ॥ ४९ ॥
यंत्रारूढो योनिं अस्पृशन् यदि निवृत्तविरक्तः ।
प्रतिक्रमणोपवासौ कर्तव्यौ तस्यायं छेदः ॥

जो अव्वंभं सेवदि विरदो तत्तो तहं अविण्णादं ।
तप्पडिक्कमणं कल्लाणपंचयं तस्स हायव्वं ॥ ५० ॥
यः अब्रह्म सेवते विरतः ततः तथा अविज्ञातं ।
प्रतिक्रमणं कल्याणपञ्चकं तस्य कर्तव्यं ॥

बहुसो वि मेहुणं जो सेवदि अण्णेहिं अणुणिदं तस्स ।
एयंतरोववासा चउमासा अहव छम्मासा ॥ ५१ ॥
बहुशोऽपि मैथुनं यः सेवते अन्यैः अज्ञातं तस्य ।
एकान्तरोपवासाः चतुर्मासाः अथवा षण्मासाः ॥

जो सेवदि अव्वंभं परेहिं विण्णादमेक्कवारम्मि ।
पायच्छित्तं तस्स हु हायव्वं मूलभूमिति ॥ ५२ ॥
यः सेवते अब्रह्म परैः विज्ञातं एकवारं ।
प्रायश्चित्तं तस्य तु कर्तव्यं मूलभूमिरिति ॥

---

१ खलणं. ख. । २ तस्स तिरत्तं पडिक्कमणं. ख. ।

जो देवमणुयतिरियउवसग्गजादं सुभुंजदि अवंभं ।
सपडिक्कमणं कल्लाणपंचयं होदि देयं से ॥ ५३ ॥

यः देवमनुष्यतिर्यगुपसर्गजातं सुभजते अब्रम्ह ।
सप्रतिक्रमण कल्याणपंचकं भवति देयं तस्य ॥

एक्केक्कदिणुग्घाडं कल्लाणं कुणदि देवअवंभे ।
तिरिए दोदोदिवसुग्घाडं मणुए अणुग्घाडं ॥ ५४ ॥

एकैकदिनोद्घाट कल्याणं करोति देवे अब्रम्हणि ।
तिरश्चि द्विद्विदिवसोद्घाट मनुजे अनुद्घाट ॥

जो णियमवंदणाणं मज्झे एक्कं च दो च किरियाओ ।
सज्झायजुदा तिण्णि व काऊण परिस्समादीहिं ॥ ५५ ॥

यः नियमवन्दनयोर्मध्ये एका च द्वे च क्रिये ।
स्वाध्याययुतास्तिस्रो वा कृत्वा परिश्रमादिभिः ॥

सुत्तो पदोससमए रेदं पस्सदि खु तस्सिमो च्छेदो ।
सपडिक्कमणं खमणं णियमं खमणं च णियमो य ॥ ५६ ॥

सुप्तः प्रदोपसमये रेतः पश्यति खलु तस्याय छेद. ।
सप्रतिक्रमण क्षमण नियम. क्षमण च नियमश्च ॥

रयणिविरामे सज्झायणियमवंदणाण मज्झम्हि ।
एक्कं च दो व तिण्णि य किरियाउ सम णिउ य पसुत्तो ॥ ५७ ॥

रजनिविरामे स्वाध्यायनियमवन्दनाना मध्ये ।
एका च द्वे वा तिस्रश्च क्रिया· समाप्य च प्रसुतः ॥

---

१ द. स. पुस्तके । २ सान्तर । ३ निरन्तरम् । ४ मज्झायणियमजिणवंदणाण
५ पाठ ।

रेदं पस्सदि जदि तो दायव्वं तस्स सणियमं खवणं ।
सपडिक्कमणं खमणं सपडिक्कमणं तहा छट्ठं ॥ ५८ ॥

रेतः पश्यति यदि ततः दातव्यं तस्य सनियमं क्षमणं ।
सप्रतिक्रमणं क्षमणं सप्रतिक्रमणं तथा षष्ठं ॥

सपडिक्कमणुववासुद्दिवसे खवणाइं वेण्णि वोंति परे ।
रयणीए पुव्वपच्छिमजामे णियमे वजुत्ताइं ॥ ५९ ॥

सप्रतिक्रमणोपवासः दिवसे क्षमणे द्वे ब्रुवन्ति परे ।
रजन्या पूर्वपश्चिमयामे नियमोपयुक्ते ॥

अवसेसणिसासमए सुज्झदि नियमेण दिट्ठए रेदे ।
दिवसम्मि सुत्तओ जदि पस्सदि तो छट्ठ पडिकमण ॥ ६० ॥

अवशेषनिशासमये शुद्धयति नियमेन दृष्टे रेतसि ।
दिवसे सुप्तः यदि पश्यति ततः षष्ठं प्रतिक्रमणं ॥

चउत्थं वद–इति चतुर्थं व्रतं ।

एगवराडयकागिणिपणचेलाइं[1] पमाददोसेण ।
अप्पं परिग्गहं जो गेण्हदि णिग्गंथवदधारी ॥ ६१ ॥

एकवराटककाकिणीपणचेलानि प्रमाददोषेण ।
अल्पं परिग्रहं यः गृह्णाति निर्ग्रन्थव्रतधारी ॥

आलोयणा य काउस्सग्गो खमणं च णियमसंजुत्तं ।
सपडिक्कमणुववासो कमसो[2] छेओ इमो तस्स ॥ ६२ ॥

---

१ विंशतिवराटकेन एकाकाकिणी चतुःकाकिणीभिः एकः पणः । २ टी स.

आलोचना च कायोत्सर्गः क्षमणं च नियमसंयुक्त ।
सप्रतिक्रमणोपवासः क्रमशः छेदोऽय तस्य ॥

अच्छादणं महग्घं जो गेण्हदि संजदो सरागमणो ।
तस्स दु पायच्छित्तं वे उववासा पडिक्कमणं ॥ ६३ ॥

आच्छादनं महार्घ्यं यः गृह्णाति संयतः सरागमनाः ।
तस्य तु प्रायश्चित्त द्वौ उपवासौ प्रतिक्रमण ॥

पोथियलिहावणत्थं जइ देइ धणं सहस्सगणणाए ।
कोइ वि कस्स वि तो पोथिय लिहाविऊण सो पच्छा ॥६४॥

पुस्तकलेखनार्थं यदि ददाति धनं सहस्रगणनायां ।
कोऽपि कस्यापि तत पुस्तकं लेखयित्वा स पश्चात् ॥

कुणउ मुणी कल्लाणाइं पंच पडिकमणत्तुणणपुव्वाइं ।
ऊणंम्मि व णाऊण सोही वहुगम्मि मूलखिद्दी ॥६५॥

करोतु मुनिः कल्याणानि पंच प्रतिक्रमण····पूर्वाणि ।
ऊने च ज्ञात्वा शुद्धिः वहुके मूलक्षिति ॥

जो अण्णेसिं दव्वं ठवेइ ठविऊण कुणइ अइलोहं ।
सठवणाण य कालि दीणत्तं दावए नियमं ॥ ६६ ॥

यः अन्येषां द्रव्यं स्थापयति स्थापयित्वा करोति अतिलोभं ।
स्थापनाना च काले दीनत्वं दापयेत् नियमं ॥

विक्खाददाणगहणं करेदि गिण्हदि परिग्गह सइरं ।
तस्स य पायच्छित्तं दायव्वमणुक्कमेणेदं ॥ ६७ ॥

घणेऊणा, ख पुस्तके पाठ । २ तद्वगणयणकाले, ख पाठ तस्थ- । ३ गिण्हदि ख. ।

विख्यातदानग्रहणं करोति गृह्णाति परिग्रहं स्वैरं ।
तस्य च प्रायश्चित्तं दातव्यमनुक्रमेणेदम् ॥

एगुववासो छट्ठं अट्ठमयं मासियं च एयाइं ।
पडिकमणमपुव्वाइं चरिमे पुण मूलभूमित्ति ॥ ६८ ॥

एकोपवासः षष्ठं अष्टमकं मासिकं च एतानि ।
प्रतिक्रमणपूर्वाणि चरमे पुनः मूलभूमिरिति ॥

पंचमं व्रतं—इति पंचमं व्रतम् ।

चउविहमेयविहं वा आहारं संजदो जदि णिसाए ।
उववासपरिस्संतो वाहिगिलाणो वभुंजिज्ज ॥ ६९ ॥

चतुर्विधमेकविधं वा आहारं संयतो यदि निशि ।
उपवासपरिश्रमतः व्याधिग्लानो वा भुज्यते ॥

तो पडिकमणपुरोगं छट्ठं खमणं च तस्स दायव्वं ।
उवसग्गेणं सव्वं रत्तिं भुंजंतस्स संठाणं ॥ ७० ॥

ततः प्रतिक्रमणपुरोगं षष्ठं क्षमणं च तस्य दातव्यं ।
उपसर्गेण सर्वे रात्रौ भुञ्जानस्य संस्थानम् ॥

संतो रोयक्कंतो सहोवसग्गो ठिओ णिसण्णो वा ।
णिसि भोयणम्मि पावइ मासियमेवेत्ति वेंति परे ॥ ७१ ॥

सन् रोगाक्रान्तः सोपसर्गः स्थितः निषण्णो वा ।
निशि भोजने प्राप्नोति मासिकमेवेति ब्रुवन्ति परे ॥

जो रत्तीए चरियं पविसिय धम्मस्स कुणइ उड्डाहं ।
दायव्वं से मूलट्ठाणमसंभोगिगो सो य ॥ ७२ ॥

यः रात्रौ चर्यां प्रविश्य धर्मस्य करोति उद्दाहं ।
दातव्यं तस्य मूलस्थानमसंभोगिकः स च ॥

सूरम्मि उग्गमंते अहव छण्णम्मि लोहिदे सेदे ।
रविबिंबे भुंजंतस्स होदि लहुमास पणयदुगं ॥ ७३ ॥

सूर्ये उद्गमे अथवा छन्ने लोहिते श्वेते ।
रविबिम्बे भुंजानस्य भवति लघुमासः पंचकद्विकम् ॥

णालीतिगस्स मज्झे जदि भुंजदि संजदो अणाचिण्णं ।
पुव्वह्णे अवरह्णे व तस्स पणगं हवे छेदो ॥ ७४ ॥

नालीत्रिकस्य मध्ये यदि भुनक्ति संयत अनाचीर्णं ।
पूर्वाह्णे अपराह्णे वा तस्य पचकं भवेत् छेदः ॥

रादो दिया व सुविणंतरम्मि महुमज्जमंससेविस्स ।
णियमुववासो णियमो केवलो सिविणभोजिस्स ॥ ७५ ॥

रात्रौ दिवि वा स्वप्नान्तरे मधुमद्यमांससेविन ।
नियमोपवासो नियम केवल स्वप्नभोजिन. ॥

छट्ठं वद-इति षष्ठ व्रतम् ।

सुद्धेण असुद्धेण य उप्पंथेणं गयस्स वायामे ।
काउस्सग्गो खमणं दायव्वमपुण्णकोसम्मि ॥ ७६ ॥

शुद्धेनाशुद्धेन च उत्पथेन गतस्य व्यायामेन ।
कायोत्सर्ग. क्षमणं दातव्य अपूर्णकोशे ॥

हेमसमये गिंभे दिवसणिसा पासुगिदरपंथेण ।
गतिगतिगछच्चउचउचउनवछणवछक्कोसे ॥ ७७ ॥

घनहिमसमये ग्रीष्मे दिवसनिशयो प्रासुक्तेतरपथेन ।
त्रिकत्रिकत्रिकत्रिकषट्चतुःचतु-चतु नवषट्नवषट्कोशे ॥

खमणं छट्ठट्ठम दसम खवणं खमणं च छट्ठ अट्ठमयं ।
खमणं खमणं खमणं छट्ठं च गदेस्सिमो छेदो ॥ ७८ ॥

क्षमणं षष्ठं अष्टमं दशमं क्षमणं क्षमणं च षष्ठं अष्टमकं ।
क्षमणं क्षमणं क्षमणं षष्ठं च गतेऽस्यायं छेदः ॥

वेंति परे तिदुतिदुछचउछचउणवछक्कणवछक्ककोसाणं ।
इगिइगितिचदुरिगिगिदुतिण्णिगिइगिगिदोण्णि खमणाणि॥७९॥

ब्रुवन्ति परे त्रिद्वित्रिद्विषट्चतु षट्चतु नवषट्नवषट्कोशानां ।
एकैकत्रिचतुरेकैकद्वित्र्येकैकैकद्विकानि क्षमणानि ॥

पिच्छं मोत्तूण मुणी गच्छदि जदि सत्तपंडुपरिमाणं[1] ।
सुज्झदि काओसग्गेण गाउगदे एयखमणेण ॥ ८० ॥

पिच्छं मुक्त्वा मुनि गच्छति यदि सप्तपादपरिमाणं ।
शुद्ध्यति कायोत्सर्गेण गव्यूतिगते एकक्षमणेन ॥

डोलियगमणम्मि[2] पुणो पुव्वुत्ततिकालपंथमलहरणं ।
वड्ढमाणपुरिससंखागुणिदं देयं गिलाणस्स ॥ ८१ ॥

दोलिकागमने पुनः पूर्वोक्तत्रिकालपथमलहरणं ।
वर्द्धमानपुरुषसंख्यागुणितं देयं ग्लानस्य ॥

जाणुपमाणम्मि जले अजंतुबहुलम्मि[3] सोलसधणुत्ति ।
इरियंतस्स विसोही मुणिणो एगो विउस्सग्गो ॥ ८२ ॥

---

१ सत्तपयपरिमाणं ख । २ जो डोलिगमणम्मि ख । ३ जो अजुबहुलम्मि ख ।

जानुप्रमाणे जलेऽजन्तुबहुले षोडशाधनूंषीति ।
ईराणस्य विशुद्धिः मुनेः एको व्युत्सर्गः ॥

जण्हू उवरिं चउचउरंगुलेसु एगादिदुगुणदुगुणाइं ।
खमणाइं जंतुपउरे पुण अब्भहियाइं देयाइं ॥ ८३ ॥

जानूपरि चतुश्चतुरङ्गुलेषु एकादिद्विगुणद्विगुणानि ।
क्षमणानि जन्तुप्रचुरे पुनः अभ्यधिकानि देयानि ॥

काउस्सग्गो आलोयणा य णावादिणा णदीतरणे ।
णावाए जलहितरणे सोही खवणादिपणयंता ॥ ८४ ॥

कायोत्सर्गः आलोचना च नावादिना नदीतरणे ।
नावा जलधितरणे शुद्धिः क्षमणादिपंचकान्ता ॥

सपरणिमित्तपउंजिददोणीणावादिणा णदीतरणे ।
अण्णे भणंति एगो उववासो तह विउस्सग्गो ॥ ८५ ॥

स्वपरनिमित्तप्रयुक्तद्रोणीनावादिना नदीतरणे ।
अन्ये भणन्ति एक उपवासस्तथा व्युत्सर्गः ॥

बुडुंतएसु णावादिगेसु वाहाहिं जो तरेऊण ।
णीसरदि तस्स छेदो खमणादिपणगपरियंतो ॥ ८६ ॥

ब्रुडत्सु नावादिकेषु बाहुभ्यां यः तीर्त्वा ।
निःसरति तस्य च्छेद क्षमणादिपंचकपर्यन्तः ॥

इरियासमिदि–इतीर्यासमितिः ।

दोण्हं भासंताणं भासंतस्संतरे विउस्सग्गो ।
आलोयणा दु छक्कम्मद्देसणे खमणमेगं तु ॥ ८७ ॥

द्वयोः भाषमाणयोः भाषमाणस्यान्तरे व्युत्सर्गः ।
आलोचना तु षट्कर्मदेशने क्षमणमेकं तु ॥

ठेलुतिछुहणं घरसारवणं घरकुड्डिलिंपणं चेव ।
अंगणवोहारणपाणिआहणणं छेणवालणमिदि छकम्मं ॥ ८८ ॥

ऊखलीकण्डनं गृहसम्मार्जनं गृहकुडिलिंपनं चैव ।
अंगणव्रोहारणं पानीयाननं कारीषज्वालनमिति षट्कर्म ॥

अविरदसुत्तपबोधिस्स गीदणट्टादिकरणभासिस्स ।
पुव्वुच्छिण्णपराधपभासिस्स य अट्ठमं देयं ॥ ८९ ॥

अविरतसुप्तप्रबोधिनः गीतनृत्यादिकरणभाषिणः ।
पूर्वच्छिन्नापराधभाषिणश्च अष्टमं देयं ॥

चाउव्वण्णपराधं जो भासदि सो अवंदणिज्जो खु ।
गाणं गणिके कीरदि छेदो पणगादिमासिगंतो से ॥ ९० ॥

चातुर्वर्ण्यापराध यः भाषते सोऽवन्दनीयः खलु ।
गान गणिक कीर्तयति छेद. पंचकादिमासिकान्तस्तस्य ॥

भासासमिदि–इति भाषासमिति ।

अण्णाणवाहिदप्पेहिं हरिदकंदादिगेसु खद्धेसु ।
सालोयण विउसग्गो खमणं पणगं च इगिवारे ॥ ९१ ॥

अज्ञानव्याधिदर्पै हरितकन्दादिकेषु खादितेषु ।
सालोचनो व्युत्सर्गः क्षमणं पंचक च एकवारे ।

---

१ इदं गाथासूत्रं ख–पुस्तके नास्ति ।

जानुप्रमाणे जलेऽजन्तुबहुले षोडशधनूंषीति ।
ईराणस्य विशुद्धिः मुनेः एको व्युत्सर्गः ॥

जण्हू उवरिं चउचउरंगुलेसु एगादिदुगुणदुगुणाइं ।
खमणाइं जंतुपउरे पुण अब्भहियाइं देयाइं ॥ ८३ ॥

जानूपरि चतुश्चतुरङ्गुलेषु एकादिद्विगुणद्विगुणानि ।
क्षमणानि जन्तुप्रचुरे पुनः अभ्यधिकानि देयानि ॥

काउस्सग्गो आलोयणा य णावादिणा णदीतरणे ।
णावाए जलहितरणे सोही खवणादिपणयंता ॥ ८४ ॥

कायोत्सर्गः आलोचना च नावादिना नदीतरणे ।
नावा जलधितरणे शुद्धिः क्षमणादिपंचकान्ता ॥

सपरणिमित्तपउजिददोणीणावादिणा णदीतरणे ।
अण्णे भणंति एगो उववासो तह विउस्सग्गो ॥ ८५ ॥

स्वपरनिमित्तप्रयुक्तद्रोणीनावादिना नदीतरणे ।
अन्ये भणन्ति एक उपवासस्तथा व्युत्सर्गः ॥

बुड्डुतएसु णावादिगेसु बाहाहिं जो तरेऊण ।
णीसरदि तस्स छेदो खमणादिपणगपरियंतो ॥ ८६ ॥

ब्रुडत्सु नावादिकेषु बाहुभ्यां यः तीर्त्वा ।
निःसरति तस्य च्छेदः क्षमणादिपचकपर्यन्तः ॥

इरियासमिदि-इर्यासमितिः ।

वोण्हं मासंताणं मासंतस्सतरे विउस्सग्गो ।
आलोयणा दु छक्कम्मद्देसणे खमणमगं तु ॥ ८७ ॥

द्वयोः भाषमाणयोः भाषमाणाभ्यन्तरे त्वनुत्सर्गः ।
आलोचना तु षष्ठं पदस्थाने क्षपणमेकं तु ॥

टोलगिकरणं घरक्कोरवणं घरकुट्टिलिंपणं चेव ।
अंगणवोलारणपाणिआणणं तणआणणमिदि छक्कम्मं ॥ ८८ ॥

उपर्विकरणं गृहसम्मार्जनं गृहकुट्टिलेपनं चैव ।
अंगणशोधनं पानीयानयनं तृणानयनमिति षट्कं ॥

अविरदगिहत्थवोधिगोदणहाणादिकरणभासिदस्स ।
पुव्वुत्तिट्ठणपरावयभासिदस्स य अट्ठमं देयं ॥ ८९ ॥

अविरतगृहस्थवोधिगोदोहनादिकरणभाषिणः ।
पूर्वोक्तस्थानपरावयभाषिणश्च अष्टमं देयं ॥

कायउत्तरणपराधे तो भावोदि सो अवेदणिज्जं सू ।
मासं भणिय छट्ठादि [illegible] ॥ ९० ॥

[illegible]
[illegible]

[illegible]

बहुवारेसु य पणगं मूलगुणं तह य मूलभूमी य ।
दायव्वा अणुक्कमसो हरिदे सारंभ ण हु विरदो ॥ ९२ ॥

बहुवारेषु च पनकं मूलगुणं तथा च मूलभूमिश्च ।
दातव्या अनुक्रमशः हरिते सारंभेण हि विरतः ॥

विसमपयवमिदणिट्ठुदभासिदकुड्डावलंवणादीहिं ।
भुत्ते सेह गिलाणेणुववासो छट्ठमिदराणं ॥ ९३ ॥

विषमपदवमितनिष्ठ्यूतभाषितकुड्यावलम्बनादिभि ।
भुक्ते सति ग्लानेन उपवास षष्ठं इतरेषां ॥

कागादिअंतराए जादे वि परिस्समादिहेदूहिं ।
असमत्थो जदि भुंजदि तस्सुववासो हवदि छेदो ॥ ९४ ॥

कागाद्यन्तराये जातेऽपि परिश्रमादिहेतुभिः ।
असमर्थो यदि भुनक्ति तस्योपवासो भवति च्छेदः ॥

गहिदोग्गहम्मि विसरिऊणं पब्भुत्तम्मि होदि उववासो ।
भोयणकाले णादम्मि अंतरायं खु कादव्वं ॥ ९५ ॥

गृहीतावग्रहे विस्मृत्य प्रभुक्ते भवत्युपवास ।
भोजनकाले ज्ञाते अन्तरायः खलु कर्तव्यः ॥

वड्ढंतरायगे संजादे भुत्ते सुदम्मि उववासो ।
सपडिक्कमणो दिट्ठम्मि अप्पणो छट्ठ पडिक्कमणं ॥ ९६ ॥

वृहदन्तरायके संजाते भुक्ते श्रुते उपवासः ।
सप्रतिक्रमणः दृष्टे स्वयं षष्ठ प्रतिक्रमणं ॥

१–९६ गाथातः ९७ गाथा ख–पुस्तके पूर्वं ।

संथारसंकरे सइं मूलगुणेयं सचित्त पुट्ठे ।
भुत्तस्स य तद्दिगुणं उववासट्ठावणा छेदो ॥ ९७ ॥
संस्तरसंकरे सति मूलगुणेऽन्यस्मिन् स्पृष्टे ।
भुक्तस्य च तद्द्विगुण उपवासस्थापना छेदः ॥
वलयगजदंतपिच्छदंडकरोकरा अत्थु ।
सासस्स सिद्धयथादि पुव्वट्ठं कइयं ॥ ९८ ॥
.. . . ।
.... ॥

जदि पुण मुहम्मि परसदि सपडिक्कमणं तु अट्ठमं कुज्जा ।
गामाए गामंतरचरियाए खमण पडिकमणं ॥ ९९ ॥
यदि पुनः मुखे पश्यति सप्रतिक्रमणं तु अष्टम कुर्यात् ।
ग्रामात् ग्रामान्तरचर्याया क्षमण प्रतिक्रमण ॥
आधाकम्मे भुत्ते गिलाणअगिलाणएण इगिवारे ।
खमणं छट्ठं बहुवारएसु संठाणमूलसिदी ॥ १०० ॥
आधाकर्माणि भुक्ते ग्लानाग्लानाभ्या एकवारे ।
क्षमण षष्ठ बहुवारेषु सन्थानमूलक्षिती ॥

एसणासमिदी—इत्येषणासमितिः ।

वियडितणकट्टचालण ठाणंतरसंकमे विउस्सग्गो ।
रत्तीए अंधयारे खमणं तच्चालणे गहणे ॥ १०१ ॥

---

१ इदं गाथासूत्र ख–पुस्तके नास्ति । २ रत्तीए बहुअंधयारे. ख–पाठः ॥

वियडितृणकाष्ठचालेन स्थानान्तरसंक्रमे व्युत्सर्ग. ॥
रात्रावन्धकारे क्षमण तच्चालने ग्रहणे ॥

उप्पण्णं पि कसाए मिच्छाकारं तक्खणे कुज्जा ।
खवणं चाहोरत्तं गदे तेण परं मासियं छेदो ॥ १०२ ॥

उत्पन्नेऽपि कषाये मिथ्याकारं तत्क्षणे कुर्यात् ।
क्षमणं च अहोरात्र गते तेन परं मसिकं छेद· ॥

आदावणणिक्खेवण—इत्यादाननिक्षेपणासमिति· ।

हरिदतणंकुरवीजाणुच्चारादिसु कदेसु उवरिं तु ।
सालोयणविउसग्गो थोवे खमणं तु वहुवारे ॥ १०३ ॥

हरिततृणाङ्कुरवीजानामुच्चारादिषु कृतेषु उपरि तु ।
सालोचनव्युत्सर्गः स्तोके क्षमण तु वहुवारे ॥

पइट्ठावण—इति प्रतिष्ठापनासमिति ।

अप्पयदपयदचारिस्स परसरसघाणचक्खुसोदाणं ।
अदिचारे इगिवितिचउपंचउववासा विउस्सग्गा ॥ १०४ ॥

---

१ इदं गाथासूत्रं ख–पुस्ते नास्ति । २ अस्मादग्रे क–पुस्तके अधस्तनवर्ती श्लोकोऽपि विद्यते । ख–पुस्तके तु नास्ति । स च प्रायश्चित्तचूलिकाख्यस्य ग्रन्थस्य सप्ताशीतितम· । तद्यथा ।

तृणकाष्ठकपाटानामुद्घाटनविघट्टने । ९
चतुर्मास्याश्चतुर्थं स्यात् सोपस्थानमवस्थितं ॥

अप्रयत्नप्रयत्नचारिणोः स्पर्शरसघ्राणचक्षुःश्रोत्राणा
अतिचारे एकद्वित्रिचतु.पंचोपवासा व्युत्सर्गाः ॥
इंदियरोधं–इती न्द्रियरोध. ।

मासचउक्कं लोचो वरिसं च जुगं च जस्स वोलीणो ।
सपडिक्कमणं खमणं छट्ठं तह मासियं छेदो ॥ १०५ ॥
मासचतुष्कं लोचः वर्षं च युगं च यस्य अतिक्रान्तः ।
सप्रतिक्रमणं क्षमणं षष्ठं तथा मासिकं छेदः ॥

अण्णे भणंति चाउम्मासियवरिसियजुगंतपडिकमणे ।
जादं पि जो ण लोचं देवावइ तस्सिमो छेदो ॥ १०६ ॥
अन्ये भणन्ति चतुर्मासिकवार्षिकयुगान्तप्रतिक्रमणे ।
जातमपि यो न लोचं ददाति तस्याय छेद. ॥

सो पुण वाहिगिलाणो जदि णो लोचं करिज्ज उग्घाडं ।
एदं पायच्छित्तं करेज्ज इयरो अणुग्घाडं ॥ १०७ ॥
स पुन· व्याधिग्लान यदि नो लोचं करोति उद्घाटं ।
एतत्प्रायश्चित्तं कुर्यात् इतर· अनुद्घाटम् ॥

लोचो वि जदि ण दिण्णो पडिकमणं णिसुणियं ण तद्दिवसे ।
तो खवणदुगं मासियमुग्घाडं तहं(ह) अणुग्घाडं ॥ १०८ ॥
लोचोऽपि यदि न दत्त प्रतिक्रमणं निश्रुतं न तद्दिवसे ।
तत क्षमणद्विकं मासिक उद्घाटं तथा अनुद्घाट ॥
लोचो–इति लोच ।

---

१ करोतीत्यर्थः । २ कृत. । ३ तत्तगुग्घाडं ख ।

देवगुरुसमयकज्जेहिं जो ण अवखित्तमाणसो कुणइ।
सज्झायचउक्कं नियममेक्कं मथ वंदणं एक्कं ॥ १०९ ॥

देवगुरुसमयकार्यैः यः न अव्याक्षिप्तमानसः करोति।
स्वाध्यायचतुष्कं नियममेकमथ वन्दनां एकाम् ॥

पक्खिय अट्ठमियं वा किरिया जो चुक्कए खमणमेकं।
तस्स च्छेदो तिण्णि विउसग्गा खलिदसज्झाए ॥ ११० ॥

पाक्षिकां आष्टमिकां वा क्रियां यः भ्रंशाति क्षमणमेकं।
तस्य च्छेदः त्रयो व्युत्सर्गाः स्खलितस्वाध्याये॥

किरियावंदणणियमेसु विउस्सग्गूणएसु विहिएसु।
अकयाए जोगभत्तीए तहा खवणद्धमिह सुद्धी ॥ १११ ॥

क्रियावंदनानियमेषु व्युत्सर्गोनकेषु विहितेषु।
अकृतायां योगभक्तौ तथा क्षमणार्द्धमिह शुद्धिः ॥

पक्खं पडि एक्केक्कं खमणं पडिकमणसुणणसंजुत्तं।
कायव्वमेव तस्स य वदिक्कमे दोण्णि उववासा ॥ ११२ ॥

पक्षं प्रति एकैकं क्षमणं प्रतिक्रमणश्रवणसंयुक्तं।
कर्तव्यमेव तस्य चातिक्रमे द्वौ उपवासौ ॥

अह पडिकमणं ण सुयं उववासो पुण कउ जदि हवेज्ज।
तो तस्स पायछित्तं दायव्वं एगखमणं तु ॥ ११३ ॥

अथ प्रतिक्रमणं न श्रुतं उपवासः पुनः कृतो यदि भवेत्।
ततः तस्य प्रायश्चित्तं दातव्यं एकक्षमणं तु ॥

ण सुयाउ जेण पक्खियपडिकमणा तिण्णिआ देउ।
पक्खतवं पडिकमणपुव्वगं चीदपक्खगणणाए देयं से॥ ११४॥

न श्रुता येन पाक्षिकप्रतिक्रमणा त्रयो दातव्या. ।
पक्षतपः प्रतिक्रमणपूर्वकं अतीतपक्षगणनया देयं तस्य ॥

आसाढे संवच्छरपडिकमणे दिज्जइ बारस उववासा ।
सिद्वाकत्तियपुण्णिमपडिकमणे अट्ठ दायव्वा ॥ ११५ ॥

आषाढे संवत्सरप्रतिक्रमणे दीयन्तां द्वादश उपवासाः ।
सितकार्तिकपूर्णिमाप्रतिक्रमणायां अष्टौ दातव्या ॥

फग्गुणचाउम्मासियपडिकमणे दिज्ज पोसधचउक्कं ।
कत्तियमासे चउरो विंति परे फग्गुणे अट्ठ ॥ ११६ ॥

फाल्गुणचातुर्मासिकप्रतिक्रमणाया ददाति प्रोषधचतुष्कं ।
कार्तिकमासे चत्वारः ब्रुवन्ति परे फाल्गुणे अष्टौ ॥

णंदीसरपक्खट्ठियं पंचमिदिणपहुदिजामपरपक्खे ।
ठियतेरसोत्ति एदम्मि अंतरे कारणवसेण ॥ ११७ ॥

नन्दीश्वरपक्षस्थितं पंचमीदिनप्रभृतियावत्परपक्षे ।
स्थितत्रयोदश इति एतस्मिन्नन्तरे कारणवशेन ॥

वरसिय चाउम्मासिय पडिकमण कप्पदे णिसामेदुं ।
तत्तो परं सुणंतस्स तप्पडिक्कमणसुणणजुदा ॥ ११८ ॥

वार्षिकीं चातुर्मासिकीं प्रतिक्रमणां कल्पते निशामयितुं ।
ततः परं शृण्वतः तत्प्रतिक्रमणश्रवणयुक्ता ॥

बारस अट्ठ य चउरो उववासा विगुणिऊण दायव्वा ।
पक्खियपायच्छित्तं पक्खगणणाए दायव्वं ॥ ११९ ॥

१ कत्तियचउम्मासपडिक्कमणे उववासा अट्ठ दायव्वा इति ख-पुस्तके पाठान्तरम् ।
२ पक्खिय. ख. । ३ णिसामेह ख. । ४ पक्खगणणे य दायव्वा, ख ।

द्वादश अष्टौ च चत्वार उपवासा द्विगुणीकृत्य दातव्याः ।
पाक्षिकप्रायश्चित्त पाक्षिकगणनया दातव्य ॥

जो पक्खमासचउमासवरिसमावासयं सुसंखित्तं ।
कुणइ य पेक्खयमणुमोदए सयं काउमसमत्थो ॥ १२० ॥

यः पक्षमासचतुर्मासवर्षं आवश्यक सुसंक्षिप्तं ।
करोति च दृष्ट्वा अनुमोदयेत् स्वयं कर्तुमसमर्थः ॥

पायच्छित्तं कमसो खमणं पणयं च पंचकल्लाणं ।
गुरुमासचउक्कं पि य दायव्वं से गिलाणस्स ॥ १२१ ॥

प्रायश्चित्त क्रमश. क्षमण पंचकं च पंचकल्याण ।
गुरुमासचतुष्कं अपि च दातव्यं तस्य ग्लानस्य ॥

आवासयपरिहीणो इगिदुगमासे य वाहिदप्पेहिं ।
तो तस्स हवे छेदो लहुगुरुआमासचउमासा ॥ १२२ ॥

आवश्यकपरिहीन· एकद्विमासे च व्याधिदर्पाभ्या ।
तर्हि तस्य भवेच्छेदः लघुगुरुकमासचतुर्मासा. ॥

आवासयपरिहीणो जो उण उभयत्थ वुत्तकालादो ।
उक्कस्सादो परदो दायव्वा मूलभूमित्ति ॥ १२३ ॥

आवश्यकपरिहीनः यः पुनः उभयत्र उक्तकालत ।
उत्कृष्टतः परतः दातव्या मूलभूमिरिति ॥

आवासयं—इत्यावश्यक ।

---

१ परपक्खय. ख । २ इगिदुगमासेहिं ख । ३ वुत्थकालादो. क । ४ अयं गाथासूत्रस्योत्तरार्ध· क—पुस्तके नास्ति, ख—पुस्तकात् संयोजितः । ५ इदमपि क—पुस्तके नास्ति, ख—पुस्तके त्वस्ति ।

उवसग्गदो अणारोगदो कारणवसेण दप्पादो।
गिहिअण्णतित्थलिंगग्गहणेणाचेलवदभंगे ॥ १२४ ॥
उपसर्गतः अनारोगतः कारणवशेन दर्पतः।
गृहस्थान्यतीर्थलिंगग्रहणेन अचेलव्रतभंगे ॥
जादे पायच्छित्तं खमणं छट्ठं कमेण संठाणं।
मूलं पि य जणणादे दायव्वं एगवारम्मि ॥ १२५ ॥
जाते प्रायश्चित्तं क्षमणं षष्ठं क्रमेण संस्थानं।
मूलमपि च जनजाते दातव्यं एकवारे ॥
अचेलकं–इत्यचेलकं।

ण्हाणे दंतग्घसणे गिहसज्जाए य रायदो सयणे।
इगिवारे कल्लाणं बहुवारे पंचकल्लाणं ॥ १२६ ॥
स्नाने दन्तघर्षणे गृहिशय्यायां च रागतः शयने।
एकवारे कल्याणं बहुवारे पंचकल्याणं ॥
अस्नाण अदंतवण खिदिसेज्जा–इत्यस्नानं अदन्तवनं क्षितिशय्या।

ठिदिभोयणेगभत्ते जाए दप्पेण एगबहुवारे।
भग्गम्मि पणगमासिगदिवसंतवछेदमूलखिदी ॥ १२७ ॥
स्थितिभोजनैकभक्ते जाते दर्पेण एकबहुवारे।
भग्ने पंचकमासिकदिवसतपच्छेदमूलक्षितयः ॥
ठिदिभोयणेगभत्तं–इति स्थितिभोजनैकभक्ते।

---

१ इदं पूर्वार्धः क-पुस्तके नास्ति, ख-पुस्तकात् संयोजितः। २ गिहत्थ ख।
३ अदंतवसन ख। ४ खिदिसयणं ख। ५ रत्ताए ख। रत्ता।

इंदियसमिदिअदंतवणलोचखिदिसयणभंजणे चेयं।
काउस्सग्गुववासा सेसाणं भंजणे तह यं॥ १२८॥

इन्द्रियसमित्यदन्तमनलोचक्षितिशयनभजने चैव।
कायोत्सर्गोपवासौ शेषाणां भंजने तथा च॥

मूलगुणा—इति मूलगुणा।

तरुमूलथिरादावणजोगे भग्गम्मि सप्पडिक्कमणे।
एयंतरोववासा चउरो मासा य दायव्वा॥ १२९॥

तरुमूलस्थिरातापनयोगे भग्गे सप्रतिक्रमणाः।
एकान्तरोपवासाः चत्वारो मासाश्च दातव्याः॥

अण्णे भणंति जोगावसेसदिवसावसाणसमउत्ति।
एयंतरोववासा सपडिक्कमणा य दायव्वा॥ १३०॥

अन्ये भणति योगावशेषदिवसावसानसमय इति।
एकान्तरोपवासाः सप्रतिक्रमणाश्च दातव्याः॥

तरुमूलजोगभंग्गं रोगिगं णिसाए जणेसु सुत्तेसु।
गुत्तेण वसहिअब्भंतरम्मि सो-चाविऊण गणी॥ १३१॥

तरुमूलयोगभग्नं रोगाङ्गं ? निशि जनेषु सुप्तेषु।
गुप्तेन वसत्यभन्तरे स-आनीय ? गणी॥

णीहारइ तेसु अणुंट्ठिएसु जदि रोगपसवणदिणंतं।
तो तस्स हवदि छेदो सपडिक्कमणं तु मूलगुणं॥ १३२॥

१ असइ ख। २ मूलं ख। ३ मणा ख। ४ जोगिग क। ५ अणिट्ठिएसु क। दिणता ख।

नीहारयति तेषु अनुष्ठितेषु यदि रोगप्रशमनदिनान्तं ।
तर्हि तस्य भवति च्छेदः सप्रतिक्रमणं तु मूलगुण ॥

जो रुक्खमूलजोगी तट्ठाणं गच्छदे ण वेलाए ।
सालोयणविउसग्गो पायच्छित्तं हवे तस्स ॥ १३३ ॥

यः वृक्षमूलयोगी तत्स्थान गच्छति न वेलायां ।
सालोचनव्युत्सर्गः प्रायश्चित्तं भवेत्तस्य ॥

तरुमूलब्भोवासयतोरणठाणादिजोगसंजुत्तो ।
अण्णस्स अप्पणो वा वेज्जावच्चादिकरणट्ठं ॥ १३४ ॥

तरुमूलाभ्रावकाशतोरणस्थानादियोगसंयुक्तः ।
अन्यस्य आत्मनो वा वैयावृत्यादिकरणार्थं ॥

जदि एग निसं वसहियमज्झे सो वसेदि तहाँ य दायव्वं ।[1]
पायच्छित्तं तस्स दु सपडिक्कमणं खमणमेगं ॥ १३५ ॥

यदि एकां निशां वसतिमध्ये स वसति तथा च दातव्यं ।
प्रायश्चित्तं तस्य तु सप्रतिक्रमणं क्षमणमेकं ॥

अथिरादावणअब्भोवगासजोगम्मि भग्गए छेदो ।
मूलगुणं पडिकमणं पुरोगपरदेसगमणं च ॥ १३६ ॥

अस्थिरातापनाभ्रावकाशयोगे भग्ने छेदः ।
मूलगुणं प्रतिक्रमणं पुरोगपरदेशगमनं च ॥

ठाणासणादिजोगे णिरवधिगे सव्वहा वि परिचत्ते ।
पायच्छित्तं कल्लाणपंचयं सपडिक्कमणं ॥ १३७ ॥

---

१ तदा च ख।

यदि पुनः परवादिविवादकरणसंन्याससंघकार्याणि ।
जातानि भवन्ति वर्षाकालयोगस्य मध्ये ॥

तो देसंतरगमणं वि ण पडिसिद्धं हवे सुविहिदाणं ।
सयलरिसिसंघसमयकज्जं करणिज्जमेव जदो ॥ १४३ ॥

तर्हि देशान्तरगमनमपि न प्रतिसिद्धं भवेत् सुविहितानां ।
सकलर्षिसंघसमयकार्यं करणीयमेव यतः ॥

बारहजोयणमज्झे जादे सल्लेहणम्मि साहूहिं ।
एगग्गामियभोयणसयणाइं अकुणमाणेहिं ॥ १४४ ॥

द्वादशयोजनमध्ये जातायां सल्लेखनायां साधुभि. ।
एकग्रामिकभोजनशयने अकुर्वाणैः ॥

जोगे गहिदम्मि वरिसयालमज्झिम्मि होदि गंतव्वं ।
तेणेव कमेणागंतव्वं एसा पुराणठिदी ॥ १४५ ॥

योगे गृहीते वर्षाकालमध्ये भवति गन्तव्यं ।
तेनैव क्रमेणागन्तव्यं एषा पुराणस्थितिः ॥

संण्णासणकाले पुण जायंतो मुणिवरो जदि पच्छेज्ज ।
कइविसूचियादीहिं मलहरणं तस्स दायव्वं ॥ १४६ ॥

सन्यासकाले पुन· याचमानो मुनिवरो यदि दृश्येत ।
कृतविसूचिकादिभि मलहरणं तस्य दातव्यं ॥

पढमे पक्खे पणगं अंतिमपक्खेण दोण्णि उववासा ।
मज्झिमपक्खेसु पुणो दायव्वो दोण्णि पणगं तु ॥ १४७ ॥

---

१ समुदायकज्ज क। २ एगगामो, क. । ३–४ इमे गाथासूत्रे ख. पुस्तके न स्तः।

प्रथमे पक्षे पंचकं अंतिमपक्षेन द्वौ उपवासौ ।
मध्यमपक्षेषु पुनः दातव्ये द्वे पंचके ॥

ऐगं णिसण्णदी सतु [1] रोधणरोगादिकारणवसेण ।
अण्णत्थ वरिसयाले जदि वसदि मुणी तदा तस्स ॥ १४८ ॥

एकत्र निषण्णः सन् रोधनरोगादिकारणवशेन ।
अन्यत्र वर्षाकाले यदि वसति मुनिस्तदा तस्य ॥

अण्णेहिं अविण्णादे देयं पडिकमणमेयखमणं च ।
णादे आदिमअंतिममज्झिमपक्खुत्तमलहरणं ॥ १४९ ॥

अन्यैरविज्ञाते देयं प्रतिक्रमणं एकक्षमणं च ।
ज्ञाते आदिमान्तिममध्यमपक्षोक्तमलहरण ॥

सल्लेहणस्स पक्खे खमियस्स परीसहेहिं भग्गस्स ।
अण्णं पाणं जाचतयस्स गणिणा वि कुसलेण ॥ १५० ॥

सल्लेखनायाः पक्षे क्षमितस्य परीषहैः भग्नस्य ।
अन्न पान याचमानस्य गणिनापि कुशलेन ॥

पच्छण्णेण अधिच्चतम्मि दिणम्मि सपडिकमणं ।
उट्ठिदणिविट्ठभोजिस्स दिवा खमणं च छट्ठदुगं ॥१५१॥

प्रच्छन्नेन अधित्यक्ते [2] दिने सप्रतिक्रमणं ।
उत्थितनिविष्टभोजिनः दिवा क्षमण च षष्ठद्विकम् ॥

उट्ठिदणिविट्ठभोजिस्स अण्णेहिं विजाणिदस्स दिवसम्मि ।
लहुमासो गुरुमासो रयणिभोजिस्स पुव्वुत्तं ॥१५२॥

---

१ एग णिसण्णदी स दु क ।

उत्थितनिविष्टभोजिनः अन्यैः विज्ञातस्य दिवसे ।
लघुमास. गुरुमासः रजनीभोजिन. पूर्वोक्तं ॥

उत्तरगुणं–इत्युत्तरगुणा· ।

अण्णाणअहंकारेहिं एगबहुवारमासए छेदो ।
अप्पासुगे वसंतस्सुववासो पणय मासिगं मूलं ॥१५३॥

अज्ञानाहंकाराभ्यां एकबहुवारमाश्रित्य छेदः ।
अप्रासुके वसतः उपवासः पंचकं मासिकं मूलं ॥

अण्णाणधम्मगारवहेदूहिं गामपुरघरारंभे[1] ।
भासंतस्सुवसोही पणगं संठाणगं मूलं ॥ १५४ ॥

अज्ञानधर्मगर्वहेतुभिः ग्रामपुरगृहारंभान् ।
भाषमाणस्योपशुद्धि. पंचकं संस्थानकं मूलं ॥

पूजारंभं जो कारवेदि अण्णाणदो गिहत्थेहिं ।
इगिवारे सालोयण विउसग्गो खमणमेगं तु ॥ १५५ ॥

पूजारम्भं य कारयति अज्ञानतो गृहस्थैः ।
एकवारे सालोचनः व्युत्सर्गः क्षमणमेकं तु ॥

बहुवारेसु य पणगं सपडिक्कमणं तु तस्स दायव्वं[2] ।
जाणंतस्सिगिवारे सपडिक्कमणं पणगमेगं ॥ १५६ ॥

बहुवारेषु च पचकं सप्रतिक्रमणं तु तस्य दातव्यं ।
जानानस्य एकवारे सप्रतिक्रमणं पंचकमेकं ॥

---

१ अण्णाणधम्मगारवेहिं जदि गामपुरघरारंभे इति क–पुस्तके पाठ· । २ दा. स ।

बहुवारे गुरुमासो दायव्वो तस्स पडिकमणं ।
छज्जीवणिकायाणं बहूण घायम्मि मूलखिदी ॥ १५७ ॥

बहुवारे गुरुमासो दातव्यस्तस्य सप्रतिक्रमणः ।
षड्जीवनिकायानां बहूना घाते मूलक्षितिः ॥

तित्थयरादीणमवण्णवादिणो संघस्स अयसकारिस्स ।
पब्भट्ठवदसमासेविणाय खमणं सपडिक्कमणं ॥ १५८ ॥

तीर्थंकरादीनामवर्णवादिने सघस्य अयशस्कारिणे ।
प्रभ्रष्टव्रतसमासेविने क्षमण सप्रतिक्रमण ॥

वाहिपडिकारहेदुं वमणं च विरेयणं सिरावेधं ।
णियंदेहे कारविदमुणिणो छट्ठत्तयं छेदो ॥ १५९ ॥

व्याधिप्रतिकारहेतु वमन च विरेचनं च सिरावेध ।
निर्वेदेहे कारापितमुनये षष्ठतपः छेदः ॥

अण्णे भणंति एदं पायच्छित्तं सव्वपदोसस्स ।
वुत्त पमादजादस्स होइ एयस्स अद्धमिदि ॥ १६० ॥

अन्ये भणन्ति एतत्प्रायश्चित्त सर्वप्रदोषस्य ।
उक्त प्रमादजातस्य भवति एतस्य अर्धमिति ॥

जो दसणपब्भट्ट घेत्तूण संजदो विहारिज्ज ।
पायच्छित्तं तस्स य मूलगुणं होइ दायव्वं ॥ ६१ ॥

यः दर्शनभ्रष्ट गृहीत्वा संयतः विहरेत् ।
प्रायश्चित्त तस्य च मूलगुण भवति दातव्यं ॥

---

१ [illegible]

विज्जाचोज्जणिमित्तं मंतं चुण्णाणि मूलकेमणं च।
जो कुणदि साहेहुं तस्सुववासो सपडिकमणो ॥ १६२ ॥

विद्यातोद्यनिमित्तं मंत्रं चूर्णानि मूलकर्म च।
यः करोति साधहेतुं तस्योपवासः सप्रतिक्रमणः ॥

सालोयणविउसग्गो सुत्तत्थं चोरियाए गेण्हंतो।
पुच्छाविणयविहीणो दिंतो वि य पुच्छमगणंतो ॥ १६३ ॥

सालोचनव्युत्सर्गः सूत्रार्थं चुर्या गृह्णन्।
पृच्छाविनयविहीनं ददत् अपि च पृच्छामगणयन् ॥

सुत्तत्थमुवदिसंतो असमाहि सिक्खयाण जो कुणइ।
सुदगुरुनिण्हवगो जो तस्स य खमणं हवदि छेदो ॥ १६४ ॥

सूत्रार्थमुपदिशन् असमाधिं शिष्याणां यः करोति।
श्रुतगुरुनिन्हवको यः तस्य च क्षमणं भवति छेदः ॥

सिक्खंतो सुत्तत्थं अणिमादो चेव गच्छदि परत्थं।
कोहादिकारणेहिं तस्स चउत्थं हवे छेदो ॥ १६५ ॥

शिक्षन् सूत्रार्थं अनियमतः चैव गच्छति परत्र।
क्रोधादिकारणैः तस्य चतुर्थं भवेच्छेदः ॥

संथारसोहितस्स पयदअपयदचारिणो होंति।
खमणदुं खमणं च य अण्णे खमणं च पणगं च ॥ १६६ ॥

संस्तरशोधयतः प्रयत्नाप्रयत्नचारिणः भवंति।
क्षमणार्धं क्षमणं च च अन्यस्मिन् क्षमणं च पंचकं च ॥

---

१ मूलकम्मं च. ख। २ -हेहुं. क। ३ दिंति. ख। ददाति। ४ चेव. ख। देव।

णट्ठे अयउवयरणे तस्सुच्छेहंगुलप्पमाणाइं ।
खवणाइं देंति केई घणंगुलपमाणाइं परे ॥ १६७ ॥

नष्टे अयउपकरणे तस्योत्सेधाङ्गुलप्रमाणानि ।
क्षमणनि ददाति केचित् घनाङ्गुलप्रमाणानि परे ॥

जिणपडिमागमपोच्छयणासे खमणादिएगकल्लाणं ।
मणिरयणकणयपडिमाणासे पणगादिमासियं छेदो ॥ १६८ ॥

जिनप्रतिमागमपुस्तकनाशे क्षमणाद्येककल्याण ।
मणिरत्नकनकप्रतिमानाशे पंचकादिमासिकं छेदः ॥

सेसुवयरणविणासे रूवादीणं च घादकरणे य ।
काउस्सग्गो छेदो मणदुप्परिणामकरणे य ॥ १६९ ॥

शेषोपकरणविनाशे रूपादीना च घातकरणे च ।
कायोत्सर्ग. छेदः मनोदुष्परिणामकरणे च ॥

जे वि य अण्णगणादो णियगणमज्झयणहेदुणायादा ।
तेसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव ससि (सु) द्धी ॥ १७० ।

येऽपि च अन्यगणतः निजगणे अध्ययनहेतुना आयाताः ।
तेषामपि तादृशानां आलोचना एव सद्शुद्धिः ॥

आयरियादिरिसीहि य आणावियदीवयपयंचेण ।
सण्णासादिणिमित्तं जिणभवणं जइ पमाएण ॥ १७१ ॥

आचार्यादि—ऋषिभिः आज्ञापितदीपकप्रपंचेन ।
सन्न्यासादिनिमित्त जिनभवनं यदि प्रमादेन ॥

---

१ ६८ गाथासूत्रं [illegible] १६१ [illegible] पूर्व ११२ [illegible] वर्तते । २ ६८ [illegible] नास्ति ।

दड्ढं हवेज्ज तो सो पक्खुववासं करेज्ज संघवई ।
तिण्णि पडिकमणा[2] पंच पंच उववासपरियंते[3] ॥ १७२ ॥

दग्धं भवेत्तर्हि स पक्षोपवासं कुर्यात् संघपतिः ।
तिस्र. प्रतिक्रमणा पंचपंचोपवासपर्यन्ताः ॥

अह जइ सत्तिविहीणो तो तिण्णि दुवालसाइं कुणउ मुणी ।
तिणि पडिकमणंताइं तप्पडिबद्धो तवो अहवा ॥ १७३ ॥

अथ यदि शक्तिविहीन तर्हि त्रीन् उपवासान् करोतु मुनिः ।
त्रीणि प्रतिक्रमणान्तानि तत्प्रतिबद्धं तपोऽथवा ॥

चूलिका—इति चूलिका ।

आलोयण पडिकमणो उभय विवेगो तहा विउस्सग्गो ।
तव परियायच्छेदो मूलं परिहार सद्दहणा ॥ १७४ ॥

आलोचना प्रतिक्रमण उभय विवेक तथा व्युत्सर्ग ।
तप पर्यायच्छेद मूल परिहार श्रद्धान ॥

एवं दसविध समए पायच्छित्तं रिसीगणे भणियं ।
तं केरिसेसु दोसेसु जायदे इदि पयासेमो ॥ १७५ ॥

एवं दशविध समये प्रायश्चित्त ऋषिगणेन भणितम् ।
तत् कीदृशेषु दोषेषु जायते इति प्रकाशयामः ॥

आहारणादिलोगग्गहणं उब्भामगादिगमणं वा ।
तणिगणदव्वादीणं अणुवेलणेण छेद हवे । १७६ ।

---

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible]
[illegible]

णट्ठे अयउवयरणे तस्सुच्छेहंगुलप्पमाणाइं ।
खवणाइं देंति केई घणंगुलपमाणाइं परे ॥ १६७ ॥

नष्टे अयउपकरणे तस्योत्सेधाङ्गुलप्रमाणानि ।
क्षमणानि ददति केचित् घनाङ्गुलप्रमाणानि परे ॥

जिणपडिमागमपोत्थयणासे खमणादिएगकल्लाणं ।
मणिरयणकणयपडिमाणासे पणगादिमासियं छेदो ॥ १६८[1] ॥

जिनप्रतिमागमपुस्तकनाशे क्षमणाद्येककल्याणं ।
मणिरत्नकनकप्रतिमानाशे पंचकादिमासिकं छेदः ॥

सेसुवयरणविणासे रूवादीणं च घादकरणे य ।
काउस्सग्गो छेदो मणदुप्परिणामकरणे य ॥१६९ ॥

शेषोपकरणविनाशे रूपादीना च घातकरणे च ।
कायोत्सर्गः छेदः मनोदुष्परिणामकरणे च ॥

जे वि य अण्णगणादो णियगणमज्झयणहेदुणायादा ।
तेसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव संसि (सु) द्धी ॥ १७० ॥

येऽपि च अन्यगणतः निजगणे अध्ययनहेतुना आयाताः ।
तेषामपि तादृशाना आलोचना एव संशुद्धिः ॥

आयरियादिरिसीहि य आणाविय दीवयपवंचेण ।
सुण्णासादिणिमित्तं जिणवयणं जइ पमाएण ॥ १७१ ॥

आचार्यादि-ऋषिभिः आज्ञापितदीपकप्रपंचेन ।
सन्यासादिनिमित्तं जिनवचन यदि प्रमादेन ॥

---

१ ६८ [illegible] १६१ गाथासूत्रं पूर्वं १६२ गाथासूत्रस्य [illegible] । २ ६६ [illegible] नास्ति ।

आतापनादियोगग्रहणं उद्भ्रामकादिगमनं वा ।
गणिगणवृषभादीनां अपृच्छमानेन येन कृतं ॥

पोत्थयपिच्छकमंडलुवक्कलयादि परेसिमुवयरणं ।
तेसिं परोक्खदो णियकज्जेणुवभोगियं जेण ॥ १७७ ॥

पुस्तकपिच्छिकाकमंडलुवल्कलादि परेषां उपकरणं ।
तेषां परोक्षतः निजकार्येण उपभोगितं येन ॥

गणहरवसहादीणं भणियं ण कयं पमादेदोसेण ।
सो आलोयणमित्तेण सुज्झए गुरुसयासम्हि ॥ १७८ ॥

गणधरवृषभादीना भणितं न कृतं प्रमाददोषेण ।
स आलोचनामात्रेण शुद्ध्यति गुरुसकाशे ॥

जे गच्छादो संहाहिवादिकज्जेण निग्गया मुणिणो ।
पंचसमिदा तिगुत्ता जिदिंदियपरीसहा वीरा ॥ १७९ ॥

ये गच्छतः संघाधिपतिकार्येण निर्गता मुनय ।
पंचसमिता त्रिगुप्ता जितेन्द्रियपरीषहा वीरा ॥

पंथादिचारपमुहादिचारं संसोधया हु तद्दियहं ।
तेसिं पुणागयाणं आलोयणमेव संसोही ॥ १८० ॥

पथ्यतिचारप्रमुखातिचारं सशोधका हि तद्दिवस ।
तेषां पुनरागतानां आलोचनमेव सशुद्धिः ॥

जं वि य अण्णगणादो णियगणमज्झयणहेदुणायादा ।
तेसिं पि तारिसाणं आलोयणमेव ससुद्धी ॥ १८१ ॥

---

१ पमाददो अप. म। प्रमादन येन। २ घा. म। ३ धीरा. म। ४ इद गाथासूत्र पूर्वमपि (१८०) आगतं ।

चक्खिंदियादिदुप्परिणामे पेसुण्णकलहअब्भक्खाणे ।
वेज्जाविच्चपमादे सज्झायझाणवाघादे ॥ १८६ ॥

चक्षुरिन्द्रियादिदुष्परिणामे पैशून्यकलहाभ्याख्याने ।
वैयावृत्यप्रमादे स्वाध्यायाध्ययनव्याघाते ॥

गोयरगयस्स लिंगुट्ठाणे अण्णस्स संकिलेसे य ।
णिंदणगरहणजुत्तो णियमो वि य होदि पडिकमणं ॥ १८७ ॥

गोचरगतस्य लिङ्गोत्थाने अन्यस्य संक्लेशे च ।
निन्दनगर्हणयुक्तः नियमोऽपि भवति प्रतिक्रमणं ॥

पडिकमणं—इति प्रतिक्रमणं ।

[illegible]क्खुमिणिंदियातिचारगकोरागमणेसु ।
[illegible] वि य णियमो आलोयणा उभयं ॥ १८८ ॥

[illegible]न्द्रियातिचार[illegible] ।
[illegible] न नियम आलोचना उभयं ॥

[illegible]यानि[illegible]यरं ।
[illegible] पडिकमणाणि[illegible]मणं उभय ॥ १८९ ॥

[illegible] ।
[illegible] उभय ॥

[illegible] ।

[illegible] ।
[illegible] ॥ १९० ॥

ससिणिद्धभूमिगमणे हरिदतणादीणमुवरि चंकमिदे ।
पंकब्भंतरगमणे जाणुमिदजलप्पवेसे य ॥ १९५ ॥

सस्निग्धभूमिगमने हरिततृणादीनामुपरि चंक्रमिते ।
पंकाभ्यन्तरगमने जानुमितजलप्रवेशे च ॥

अण्णणिमित्तपउंजिदद्दोणीणावादिणा णदीतरणे ।
उच्चारं पस्सवणं काऊणं उववासयागमणे ॥ १९६ ॥

अन्यनिमित्तप्रयुक्तद्रोणीनावादिना नदीतरणे ।
उच्चारं प्रस्रवण कृत्वा उपवासकागमने ॥

पोत्थयजिणपडिमाफोडणम्मि पंचविहथावरविघादे ।
रत्तीए असमदेक्खिददेसे तणुमलविसग्गे य ॥ १९७ ॥

पुस्तकजिनप्रतिमास्फोटने पचविधस्थावरविघाते ।
रात्रौ अदृष्टदेशे तनुमलविसर्गे च ॥

एक्को काउस्सग्गो पायच्छित्तं जिणेहिं पण्णत्तं ।
बितिचउरिंदियघादे बियतियचउरो विउस्सग्गा ॥ १९८ ॥

एक. कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त जिनैः प्रज्ञप्तं ।
द्वित्रिचतुरिन्द्रियघाते द्विकत्रिकचत्वारो व्युत्सर्गा. ॥

उज्जोए पडिलिहियं दाउं संथारयं णिसि पसुत्तो ।
उव्वत्तणपरियत्तणणिग्गमणविवज्जिदो पयदो ॥ १९९ ॥

उद्योते प्रतिलेखित्त आदाय संस्तरक निशि प्रसुप्तः ।
उद्वर्तनपरिवर्तननिर्गमनविवर्जितः प्रयत्नः ॥

---

१ य कदत्तागमणे ख । २ पाउण्णिम्नि. ख, पान्ने ।

अगरचन्द भैरोदान सेठिया
जैन ग्रन्थालय,
बीकानेर, (राजपूताना.)

जदि संथारसमीवे पेच्छइ पंचिंदियं मुदं सूरुदये ।
तो तस्स हवे छेदो पंचविउस्सग्गपरिमाणो ॥ २०० ॥

यदि संस्तरसमीपे प्रेक्षते पंचेन्द्रिय मृतं सूर्योदये ।
तर्हि तस्य भवेच्छेदः पंचव्युत्सर्गपरिमाणः ॥

दिवसियरादियपक्खियचउमासियवरिसयादिकिरियाण ।
चरिमे ऊणक्खूणणिमित्त एगो विउस्सग्गो ॥ २०१ ॥

दैवसिरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकवार्षिकादिक्रियाणां ।
चरमे ऊनाधिक्यनिमित्त एको व्युत्सर्ग ॥

सिद्धंतसुणणवक्खाणावसाणे अंगपहुदिपुव्वाणं ।
परियट्टणावसाणे ऊणक्खूणणिमित्तं विउस्सग्गो ॥ २०२ ॥

सिद्धान्तश्रवणव्याख्यानावसाने अंगप्रभृतिपूर्वाणां ।
परिवर्तनावसाने ऊनाधिक्यनिमित्त व्युत्सर्गः ॥

विउस्सग्गो इति व्युत्सर्गः ।

णिव्वियडी पुरिमंडल आयंबिलमेयठाण खमणमिदि ।
एसो तवोत्ति भणिओ तवोविहाणप्पहाणेहिं ॥ २०३ ॥

निर्विकृतिः पुरिमंडल आचाम्लं एकस्थान क्षमणमिति ।
एतत्तप इति भणितः तपोविधानप्रधानैः ॥

पुध पुध वा मिस्सो वा उग्घादो वा तहा अणुग्घादो ।
छम्मासेहिं य परदो णत्थि तवो वीरजिणतित्थे ॥ २०४ ॥

---

१ [illegible]

प्रथक् पृथग्वा मिश्र वा उद्घाट वा तथा अनुद्घाट ।
षण्मासैश्च परतः नास्ति तपो वीरजिनतीर्थे ॥

उग्घादो संतरिदो वीसमणजुदो तदण्णहा इदरो ।
वाहिगिलाणादीणं पढमो इदराण पुण इदरो ॥ २०५ ॥

उद्घाटं सान्तरितं विश्रमणयुक्त तदन्यथा इतरत् ।
व्याधिग्लानादीना प्रथमं इतरेषा पुनः इतरत् ॥

उव्वत्तण परियत्तण कंडूवण[1] उंटणं पसारणयं ।
कुव्वंतो अपमज्जिददेहो पणयारिहो होई ॥ २०६ ॥

उद्वर्तनं परिवर्तनं कंडूयनं आकुंचन प्रसारण ।
कुर्वन् अप्रमार्जितदेहः पंचकार्हो भवति ॥

कुड्डुं खंभं भूमिं वक्कलयादीण अप्पडिलिहित्ता ।
आमासइ उट्ठंघइ वइसइ तो होइ पणयं से[2] ॥ २०७ ॥

कुड्यं स्तम्भ भूमि वल्कलादींश्च अप्रतिलिख्य ।
आश्रयति उत्तिष्ठति वसति तर्हि भवति पंचकं तस्य ॥

वियडिं तिण कट्ठं वा रादो व दिया व अप्पडिलिहित्ता ।
गेण्हंतो चालंतो पणयरिहो कप्पववहारे ॥ २०८ ॥

वियडिं तृण काष्ठं वा रात्रौ दिवि वा अप्रतिलिख्य ।
गृह्णन् चालयन् पंचकार्हः कल्पव्यवहारे ॥

उच्चारं पस्सवणं कलिं च पासाणवियडियादीयं ।
अपमज्जिददेसम्मि विकिंचंतो होइ पणयरिहो ॥ २०९ ॥

---

१ कंडूअणा. क । २ सोइ क । ३ सो. ख ।

उच्चारं प्रस्रवणं कालिं च पाषाणवियाडिकादिकं ।
अप्रमार्जितदेशे विकुर्वन् भवति पंचकार्हः ॥

कंटय कालिं च पासाणछल्लितणकट्ठखप्परादीयं ।
अंगुलिणहदंतेहिं छिंदंतो होइ पणयरिहो ॥ २१० ॥

कंटकान् कालिं च पाषाणत्वक्तृणकाष्ठखर्परादिकं ।
अंगुलिनखदन्तैः छिन्दन् भवति पंचकार्हः ॥

पायच्छित्तं दिण्णं कुव्वंतो जइ अंतरिज्ज रोगेण ।
तो णीरोगो संतो पणयरिहो कप्पववहारे ॥ २११ ॥

प्रायश्चित्तं दत्तं कुर्वन् यदा अन्तरियात् रोगेण ।
तर्हि नीरोगः सन् पंचकार्हः कल्पव्यवहारे ॥

पायच्छित्तं दिण्णं कुव्वंतो जो सदेसपरदेसे ।
गुरुकज्जं साधिज्जो महल्लयं तस्स आयस्स ॥ २१२ ॥

प्रायश्चित्तं दत्तं कुर्वन् यः स्वदेशपरदेशे ।
गुरुकार्यं साधयति महत् तस्य आगतस्य ॥

पुव्वपदिण्णं पायच्छित्तं छंडादिऊण पणयं तु ।
दायव्वमेव गुरुणा इय भणियं कप्पववहारे ॥ २१३ ॥

पूर्वप्रदत्तं प्रायश्चित्तं त्याजयित्वा पंचकं तु ।
दातव्यमेव गुरुणा इति भणितं कल्पव्यवहारे ॥

उप्पण्णं पि कसाए मिच्छाकारो न एक्कक्के कुज्जा ।
पणय महोरत्तगदे तेण परं मासियं छेदो ॥ २१४ ॥

---

१ [illegible]

चतुःषष्टिः गुरुमासाः गोक्षयमातंगखटिकादीनां।
निर्ग्रन्थदीक्षादाने प्रायश्चित्तं समुद्दिष्टं॥

कप्पव्ववहारे पुण छम्मासेहिं परं तु णत्थि तवो।
इह वड्ढमाणतित्थे तेण य छम्मासियं दिण्णं॥ २२५॥

कल्पव्यवहारे पुनः षण्मासैः परं तु नास्ति तपः।
इह वर्धमानतीर्थे तेन च षण्मासिकं दत्तं॥

छम्मासियं–इति षाण्मासिकं।

अण्णं वि य मूलुत्तरगुणादिचारेसु पुव्वमवि य तवो।
वुत्तो[2] जहारिहमिदो पुरिसे अधिकिच्चं[1] पुण भणिमो॥ २२६॥

अन्यदपि च मूलोत्तरगुणातिचारेषु पूर्वमपि च तपः।
उक्तं यथार्हं इतः पुरुषान् अधिकृत्य पुनः भणामः॥

आगाढाधंचपयत्तचारिअणु[3]विचिणो सपडिवक्खा।
अट्ठ णरा होंति पुणो सोलसधा अक्खसंचारे[4]॥ २२७॥

आगाढ·········प्रयत्नचार्यनुवीचीकाः सप्रतिपक्षाः।
अष्टौ नरा भवन्ति पुनः षोडशधा अक्षसंचारे॥

---

१ अविकिच्छमिद भणिमो. क। २ वच. ख। ३ यणुवीचीणो ख। ४ अस्मा-दग्र ख-पुस्तके इद गाथासूत्र उपलभ्यते।

पढमक्खे अंतगदे आदिगदे संकमे (दि) बिदियक्खो।
विण्णि वि गतूणंतं आदिगदे संकमदि (तदि) यक्खो॥
प्रथमाक्ष अन्तगते आद्यागते संक्रामति द्वितीयाक्ष।
द्वावपि गत्वान्तं आद्यागते संक्रामति तृतीयाक्ष.॥
गाथेयं गोम्मटसारेऽपि वर्तते प्रमादसंख्यागणनावसरे।

णिव्वियडिआदिया जे पुव्वुत्ता पंचएक्कतीसंते ।
अक्खाणं संचारेणं होंति ते इह विहं जोगे ॥ २२८ ॥

निर्विकृत्यादिका ये पूर्वोक्ताः पंचैकत्रिंशदन्ताः ।
अक्षाणां संचारेण भवन्ति ते इह विधं योगे ॥

पढमो सुद्धो सोलससु सेसपण्णारसा णरा कमसो ।
पण्णारसतवसलागा पढमादीया अणुचरंति ॥ २२९ ॥

प्रथम शुद्ध षोडशेषु शेषपंचदश नरा क्रमशः ।
पंचदशतप.शलाका प्रथमादिका अनुचरन्ति ॥

अवसेसतवसलागा सोलस पुव्वुत्तअट्ठपुरिसा वि ।
दो दो चरंति एवं दक्खिणमग्गो समुद्दिट्ठो ॥ २३० ॥

अवशेषतप शलाकाः षोडश पूर्वोक्ताष्टपुरुषा अपि ।
द्वे द्वे चरन्ति एव दक्षिणमार्गो समुद्दिष्टः ॥

उत्तरमग्गेण पढमो एवं सेसा चरंति दो दो य ।
अट्ठण्हं आइल्लो तिण्णि य चत्तारि अवसेसा ॥ २३१ ॥

उत्तरमार्गेण प्रथम· एक· शेषा· चरन्ति द्वे द्वे च ।
अष्टानां आदिम त्रिः च चत्वार अवशेषाः ॥

अहवा पढमे पक्खे दसेसु दो दो य तिण्णि सोलसमे ।
मिस्ससलागा देया ताण ठाणं सुणह कमेण ॥ २३२ ॥

अथवा प्रथमे पक्षे दशसु द्वे द्वे च त्रि षोडशे ।
मिश्रशलाका देया. तासां स्थानं शृणुत क्रमेण ॥

---

१ [illegible]

प्रथमा द्वितीया तृतीया चतुर्थी पंचमी षष्ठी त्रयोदशमी ।
सप्तमी अष्टमी चतुर्दशमी अपि च पञ्चदशमी एव ॥

णवदसएक्कारसमी य बारसमी तह य चेव सोलसमी ।
अट्ठारसमी बावीसिमा य पुण वीसिमा चेव ॥ २३९ ॥

नवदशैकादशमी च द्वादशमी तथा चैव षोडशी ।
अष्टादशमी द्वाविंशतितमी च पुन: विंशतितमी एव ॥

सत्तारसमी एगूणवीसिमा य चउवीसा ।
इगिवीसइमा तेवीसिमा य छव्वीसतीसइमा ॥ २४० ॥

सप्तदशी एकोनविंशतितमी च चतुर्विंशतितमी ।
एकविंशतितमी त्रयोविंशतितमी च षड्विंशतित्रिंशत्तम्यौ ॥

सत्तावीसइमा वि य अट्ठावीसा य अउणतीसइमा
इगतीसइमा य तहा मिस्सयसट्ठाइ अट्ठपयं ॥ २४१ ॥

सप्तविंशतितमी अपि च अष्टाविंशतितमी एकोनत्रिंशत्तमी ।
[illegible] ॥

अप्पपणोल्लणमागपडिक्कमणं [illegible] ।
[illegible] ॥ २४२ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥ २४३ ॥

तपोभूमिमतिक्रामन् मूलस्थान च यः न संप्राप्तः ।
तस्य पर्यायच्छेदः प्रायश्चित्त समुद्दिष्टं ॥

णियगच्छादो णिग्गय एगागी विहरिऊण पुण आणं ।
जेत्तियकालपमाणा पव्वज्जा छिज्जए तस्स ॥ २४४ ॥

निजगच्छतो निर्गत्य एकाकी विहृत्य पुनः आगमन ।
यावत्कालप्रमाणा प्रव्रज्या छिद्यते तस्य ॥

पुव्वं जहुत्तचारी पच्छा पासत्थभावमुववण्णो ।
जेत्तियेकालं विहरदि मुक्कधुरो सो समण्णं पुणो ॥ २४५ ॥

पूर्वं यथोक्तचारी पश्चात् पार्श्वस्थभावमुपपन्न· ।
यावत्कालं विहरति मुक्तधुर· स श्रमणः पुनः ॥

तेत्तियकालपमाणा पव्वज्जा तस्स छिज्जदि जदिस्स ।
पासत्थभावमुक्कुस्सुववण्णसुणिम्मलचरित्तं ॥ २४६ ॥

तावत्कालप्रमाणा प्रव्रज्या तस्य छिद्यते यते ।
पार्श्वस्थभावमुक्तस्य उत्पन्नसुनिर्मलचरित्रस्य ॥

तस्सिस्साणं सोही सगणत्थाइरियणामगहणेण ।
लोचं काऊण तदो पडिकमणं कुणउ ण हु अण्णं ॥ २४७ ॥

तस्य शिष्याना शुद्धि स्वगणस्थाचार्यनामग्रहणेन ।
लोचं कृत्वा तदा प्रतिक्रमण करोतु न हि अन्यत् ॥

पासत्थादीहिं समं आचरंतो सगिप्पमादेण ।
छम्मासब्भंतरदो जदि तद्दोसे णिसेवदि सो ॥ २४८ ॥

---

१ तक्काल. ख-ग । २ धरो. ख-ग । ३ समणपोळो ख-ग । ४ श्रा. क ।

पर्वस्थाद्दृष्टि मम अभवत् [illegible] ।
[illegible] यदि तद्भवत् [illegible] ॥

तो ते तवसा सुद्धा उस्सासेहिं परं तु कायव्वा ।
तं पव्वज्जाछेदो कुसलकुसलाणयस्स पुणो ॥ २५६ ॥

ततः तस्य तपसा शुद्धिः [illegible] परं तु कर्तव्या ।
तत्प्रव्रज्याछेदः कुशलाकुशलानयस्य पुनः ॥

कलहं काऊण खमावणत्थाउ पडिवित्त रिसी ।
जदि ददाति जिणकप्पे तस्स पंचदिवसियवरछेदो ॥ २५८ ॥

कलहं कृत्वा [illegible] ऋषिः ।
यदि ददाति [illegible] तस्य पञ्चदिवसिकच्छेदः ॥

पलायरियस्स दिणाणि दस आयरियस्स पज्जरस्सदिवसा ।
छिंदंति पक्खछेदस्स पुण [illegible] ॥ २५९ ॥

[illegible]
[illegible] ।

एवं जेणिंदणिदणा अडकादिणो [illegible] पव्वज्जा वा ।
[illegible] ॥ २५२ ॥

[illegible] ।
[illegible] ।

[illegible]

जे [illegible] ।
[illegible] ॥ २५३ ॥

योऽपाgive मितपराधः तपश्छेदेन विना शुद्धिमुपयाति ।
सभोगकरणयोग्य मूलक्षिति दीयते तस्य ॥

पंचमहव्वदभट्ठो छावासयवज्जिदो णिरणुतावी ।
उस्सुत्तकारउ तह सच्छंदो मूलखिदिमेदि ॥ २५४ ॥

पञ्चमहाव्रतभ्रष्टः षडावश्यकवर्जितः निरनुतापी ।
उत्सूत्रकारकः तथा स्वच्छंदः मूलक्षितिमेति ॥

पासत्थादी चउरो तप्पासे जे परे च पव्वइदा ।
ते सव्वे वि [1]य मूलट्ठाणं पावंति हु णियत्ता ॥ २५५ ॥

पार्श्वस्थादयश्चत्वार तत्पार्श्वे ये परे च प्रव्रजिताः ।
ते सर्वेऽपि च मूलस्थान प्राप्नुवन्ति हि निवृत्ताः ॥

तेस्सिस्साणं सुद्धी सगणत्थायरियणामगहणेण ।
लोचं काऊण तदो पडिकमणं कुणइ ण हु अण्णं ॥ २५६ ॥

तच्छिष्याना शुद्धिः स्वगणस्थाचार्यनामग्रहणेन ।
लोच कृत्वा ततः प्रतिक्रमण करोतु न हि अन्यत् ॥

संघाहिवस्स मूलं पत्तस्स वि दिज्जदे ण मूलखिदी ।
उड्डाहपसमणत्थं बहुजणमाधारदाएया ॥ २५७ ॥

सघाधिपतेः मूल प्राप्तस्य अपि न दीयते मूलक्षितिः ।
उड्डाहप्रशमनार्थं बहुजनमाधारदायका ॥

जदि आयरिओ छेद च मूलभूमि च पत्तओ मरणं ।
तो तस्स जहाजोग्गं छेदो मूलं च दायव्वं ॥ २५८ ॥

---

१ इदं गाथामत्र रा—ग पुस्तके नास्ति । पूर्वमप्यागतं ५२ पृष्ठे ।

यदि आचार्यः छेद मूलभूमि च प्राप्त. मरणं ।
तर्हि तस्य यथायोग्य छेदः मूल च दातव्य ॥

कालम्मि असंपदुत्ते पत्तो छेदं च मूलभूमिं च
जदि आयरिओ तो से तवसुद्धी चेव दायव्वा ॥ २५९ ॥

कालेऽसंप्राप्ते प्राप्त. छेदं च मूलभूमिं च ।
यदि आचार्यः तर्हि तस्य तप शुद्धि. चैव दातव्या ॥

दिज्जदि तवो वि संठाणादीछम्मासखवणपेरंतो ।
अवि सत्तमासपेरंतो वा अण्णं ण दायव्वं ॥ २६० ॥

दीयते तपोऽपि संस्थानादिषण्मासक्षमणपर्यन्त ।
अपि सप्तमासपर्यन्त वा अन्यन्न दातव्यं ॥

आयरियस्स दु मूलं दितो सयमेव मूलभूमी सो ।
पावदि उड्डाहकरो धम्मस्स जसोवहकरो सो ॥ २६१ ॥

आचार्यस्य तु मूलं ददन् स्वयमेव मूलभूमिं स ।
प्राप्नोति उड्डाहकरः धर्मस्य यशोवधकर स ॥

मूल-इति मूलम् ।

मूलविदी वोलीणो सहसंभोगस्स जो द जोगो दु ।
सो पावदि परिहारं पायच्छित्तं ति विंति जिणा ॥ २६२ ।

मूलकीर्तिं त्यक्त्वा सहसंभोगस्य यश्च (अ) योग्यस्तु ।
स प्राप्नोति परिहार प्रायश्चित्त इति ब्रुवन्ति जिनाः ॥

तं पि अ अणुपट्ठावणपारंचिगभेददो दुवे दुविहं ।
सगणपरगणविभेदेणिह अणुपट्ठावणं दुविहं ॥ २६३ ॥

आठमदर्शान् एव मौनव्रती पञ्च पंच उपवासान् ।
कृत्वा न पारयन् गमयति जघन्येन स साधुः ॥

उक्कस्सेणं छम्मासे उववासिऊण पारिंतो ।
गमइ वरिसाणि बारस अणुपट्ठवगो गणणिबद्धो ॥ २६९ ॥

उत्कृष्टेन षण्मासान् उपोष्य पारयन् ।
गमयति वर्षाणि द्वादश अनुपस्थापको गणनिबद्धः ॥

सगणो-इति स्वगणानुपस्थानम् ।

परगणअणुपट्ठवगो वि एरिसो चेव किं तु जम्मि गणे ।
उप्पण्णा ते दोसा दप्पादीएहिं पुव्वुत्ता ॥ २७० ॥

परगणानुपस्थापकोऽपि एतादृशश्चैव किन्तु यस्मिन् गणे ।
उत्पन्ना ते दोषा दर्पादिकैः पूर्वोक्ता ।

तेणायरिएण य सो परगणमणुपट्ठविज्जदे साहू ।
तत्थतणाइरियंते आलोचदि सो तदो दोसे ॥ २७१ ॥

तेनाचार्येण च स परगणं अनुपस्थाप्यते साधुः ।
तत्रत्याचार्यान्ते आलोचयति स ततः दोषान् ॥

आलोयणं सुणित्ता पायच्छित्तं ण दिंतएण पुणो ।
तेण वि आयरिएणं अण्णत्थणुपट्ठविज्जदि जदि सो ॥ २७२ ॥

आलोचनं श्रुत्वा प्रायश्चित्तं न ददता पुनः ।
तेनापि आचार्येण अन्यत्र अनुपस्थाप्यते यतिः सः ॥

तेण वि अण्णत्थेवं तिण्णि य चत्तारिपंचछस्सत्ता ।
आयरियाण समीवे अणुपट्ठाविज्जदे कमसो ॥ २७३ ॥

तेनापि अन्यत्रैव त्रिचतुःपंचषट्सप्तानां ।
आचार्याणां समीपे अनुपस्थाप्यते क्रमशः ॥

पच्छिमगणिणा वि पुणो पुव्वुत्तालोचिदायरियपासं ।
अणुपट्ठविदो संतो णियंत्तिदूणेदि तप्पासं ॥ २७४ ॥

पश्चिमगणिनापि पुनः पूर्वोक्तालोचिताचार्यपार्श्वं ।
अनुपस्थापितः सन् निवृत्यैति तत्पार्श्वं ॥

सो वि जहण्णं मज्झिमसुक्कस्सं वा पुरोदिदं छेदं ।
दाउं तस्सायरिओ चरावए पुव्वविधिणेव ॥ २७५ ॥

सोऽपि जघन्यं मध्यमं उत्कृष्टं वा पुरोदितं छेदं ।
दत्वा तस्मै आचार्यः चारयति पूर्वविधिनैव ॥

परगण—इति परगणानुपस्थानम् ।

तित्थयरगणधराणं आयरियाणं महड्ढिपत्ताणं ।
संघस्स पवयणस्स य आसादणकारओ पावो ॥ २७६ ॥

तीर्थंकरगणधराणां आचार्याणां महर्द्धिप्राप्तानां ।
संघस्य प्रवचनस्य च आसादनाकारकः पापः ॥

रायापराधकारी रायामच्चाण तह य वंदंतो ।
रायग्गमहिसिपडिसेवगो य धम्मद्दुहो तह य ॥ २७७ ॥

राजापराधकारी राजामात्यान् तथा च वन्दमानः ।
राजाग्रमहिषीप्रतिसेवकश्च धर्मध्रुक् तथा च ॥

जो एवंविहदोसो चाउव्वण्णस्स सवणसंघस्स ।
मज्झम्मि पंचतालं दाऊणं सो संघहबाहिरओ ॥ २७८ ॥

य एवंविधदोषः चातुर्वर्ण्यस्य श्रमणसंघस्य ।
मध्ये पंचतालं दत्त्वा स संघबाह्यः ॥

एसो अवंदणिज्जो पंचमहापादगोत्ति घोसित्ता ।
पायच्छित्तं दाउं सदेसदो घाडिदो संतो ॥ २७९ ॥

एष अवन्दनीय पंचमहापातकीति घोषयित्वा ।
प्रायश्चित्तं दत्त्वा स्वदेशतो घाटित सन् ॥

गंतूण अण्णदेसे जत्थ य धम्मं ण याणए लोओ ।
तत्थत्थिऊण पायच्छित्तं आचरउ गणिदिण्णं ॥ २८० ॥

गत्वा अन्यदेशे यत्र च धर्मं न जानाति लोकः ।
तत्र स्थित्वा प्रायश्चित्त आचरतु गणिदत्तम् ॥

तं पुण सपरगणट्ठियअणुपट्ठवगस्स जारिसं दिण्णं ।
तारिसमेवेदस्स वि जहण्णमुक्कस्समिदरं वा ॥ २८१ ॥

तत्पुन स्वपरगणस्थितानुपस्थापकस्य यादृश दत्त ।
तादृशमेवैतस्यापि जघन्य उत्कृष्ट इतरद्वा ॥

पारं अंचदि परदेसमेदि गच्छदि जदो तदो एसो ।
पारंचिगोत्ति भण्णदि पायच्छित्तं जिणमदम्मि ॥ २८२ ॥

पार अंचति परदेशमेति गच्छति यतस्तत एष ।
पारञ्चिक इति भण्यते प्रायश्चित्त जिनमते ॥

एदं पायच्छित्तं कप्पव्ववहारभासिदं भणियं ।
जीदे वि स एव विधी णवरि सतदोमासिगादिछग्गुरुमासा २८३

एवं प्रायश्चित्त कल्पव्यवहारभाषितं भणितं ।
जीते अपि स एव विधिः नवरि सप्त मासिकादिषड्गुरुमासाः ॥

आदितिगसंघयणो भवभीरू जिदपरीसहो धीरो ।
गीदत्थो दढधम्मो चरदि पारंचिगं भिक्खू ॥ २८४ ॥

आदित्रिसंहननः भवभीरुः जितपरीषहः धीरः ।
गीतार्थः दृढधर्मा चरति पारंचिकं भिक्षुः ॥

पारंचिग-इति पारंचिकं ।

परिणामपच्चएण सम्मत्त उज्झिऊण मिच्छत्तं ।
पडिवज्जिऊण पुणरवि परिणामवसेण सो जीवो ॥ २८५ ॥

परिणामप्रत्ययेन सम्यक्त्व उज्झित्वा मिथ्यात्व ।
प्रतिपद्य पुनरपि परिणामवशेन स जीवः

णिंदणगरहणजुत्तो णियत्तिऊणो पडिविज्ज सम्मत्तं ।
जं तं पायच्छित्त सद्दहणासण्णिद होदि ॥ २८६ ॥

निन्दनगर्हणयुक्तः निर्वर्त्य पातिपद्यते सम्यक्त्वं ।
यत्तत्प्रायश्चित्त श्रद्धानसज्ञित भवति ॥

जदि पुण विराहिऊण धम्म मिच्छत्तमुवगमो होदि ।
तो तस्स मूलभूमी दायव्वा लोयविदिदस्स ॥ २८७ ॥

यदि पुनः विराध्य धर्म मिथ्यात्वमुपगमो भवति ।
तर्हि तस्य मूलभूमिः दातव्या लोकविदितस्य ॥

सद्दहणा—इति श्रद्धानम् ।

एवं दसविधपायच्छित्त भणियं तु कप्पववहारे ।
जीदम्मि पुरिसभेद णाउं दायव्वमिदि भणियं ॥ २८८ ॥

एवं दृष्टादिप्रायश्चित्तं भणितं नु कल्पव्यवहारे ।
जीते पुरुषभेदं ज्ञात्वा दातव्यमिति भणितं ॥

गिरिपात्रचित्तं-इति ऋषिप्रायश्चित्त समाप्तम् ।

जं समणाणं वुत्तं पायच्छित्तं तह जमाचरणं
तेसिं चेव पउत्तं तं समणीणंपि णायव्वं ॥ २८९ ॥

यत् श्रमणानामुक्तं प्रायश्चित्तं तथा यत् आचरणम् ।
तेषां चैव प्रोक्तं तत् श्रमणीनामपि ज्ञातव्यम् ॥

णवरि परियायछेदो मूलट्ठाणं तहेव परिहारो ।
दिणपडिमा वि य तीसं तियालजोगो य णेवत्थि ॥ २ ॥

नवरि पर्यायच्छेदो मूलस्थानं तथैव परिहारः ।
दिनप्रतिमापि च तासां त्रिकालयोगश्च नैवास्ति ॥

थिरअथिराणज्जाणं पमादद्प्पेहिं एगबहुवारं ।
सामाचारदिचारे पायच्छित्तं इमं भणियं ॥ २९१ ॥

स्थिरास्थिराणामार्याणां प्रमाददर्पाभ्यां एकबहुवारम् ।
सामाचारातिचारे प्रायश्चित्तं इदं भणितम् ॥

काउस्सगो खमणं खमणं पणगं च पणगं छट्ठं च ।
छट्ठं तहेव मासिगमेवमिसीणं पि दायव्वं ॥ २९२ ॥

कायोत्सर्गः क्षमणं क्षमणं पंचकं च पंचकं षष्ठं च ।
षष्ठं तथैव मासिकमेवं ऋषीणामपि दातव्यम् ॥

एकस्स वत्थजुयलस्सेक्कस्स गोणिया एक्ककंयाए ।
पासुगजलेण पक्खालणम्मि एक्को विउस्सग्गो ॥ २९३ ॥

आदितिगसंघदणो भवभीरू जिदपरीसहो धीरो ।
गीदत्थो दढधम्मो चरदि पारंचिग भिक्खू ॥ २८४

आद्यत्रिसंहनन. भवभीरु: जितपरीषहः धीर. ।
गीतार्थः दृढधर्मा चरति पाराञ्चिक भिक्षुः ॥

पारंचिग-इति पारचिक ।

परिणामपच्चएणं सम्मत्त उज्झिऊण मिच्छत्तं ।
पडिवज्जिऊण पुणरवि परिणामवसेण सो जीवे

परिणामप्रत्ययेन सम्यक्त्व उज्झित्वा मिथ्यात्व
प्रतिपद्य पुनरपि परिणामवशेन स जीवः

णिंदणगरहणजुत्तो णियत्तिऊणो पडिविज्ज र
जं त पायच्छित्त सद्दहणासण्णिदं होदि ॥ २

निन्दनगर्हणयुक्तः निर्वर्त्य पातिपद्यते सम्यक
यत्तत्प्रायश्चित्त श्रद्धानसञ्ज्ञित भवति ॥

जदि पुण विराहिऊणं धम्म मिच्छत्तमुवगमो
तो तस्स मूलभूमी दायव्वा लोयविदिदस्स ॥ २

यदि पुनः विराध्य धर्म मिथ्यात्वमुपगमो भवति ।
तर्हि तस्य मूलभूमिः दातव्या लोकविदितस्य ॥

सद्दहणा—इति श्रद्धानम् ।

एवं दसविधपायच्छित्त भणियं तु कप्पववहारे ।
जीदम्मि पुरिसभेद णाउं दायव्वमिदि भणियं ॥ २८८ ॥

पुष्पवती यदि विरती जायते ततः करोतु त्रीणि दिनानि ।
आचाम्लनिर्विकृतीनामेकतरकं नु ॥

सज्झायदेववंदणणियमादियाओ सव्वकिरियाओ ।
मोणेण कुणउ तिण्णि वि दिणाणि तो तुरियदिवसम्मि ॥२९९॥

स्वाध्यायदेववंदननियमादिकाः सर्वक्रियाः ।
मौनेन करोतु त्रीण्यपि दिनानि ततः तुरीयदिवसे ॥

पच्छण्णए पएसे पासुगसलिलेण एगकलसेण ।
पक्खालिदूण गत्त गुरुमूले गिण्हदु वदाइं ॥ ३०० ॥

प्रच्छन्ने प्रदेशे प्रासुकसलिलेन एककलशेन ।
प्रक्षाल्य गात्रं गुरुमूले गृह्णातु व्रतानि ॥

जदि पुण चंडालादी छिविज्ज विरदी कहिं पि विरदो वा ।
तो जलण्हाण किच्चा उववासं तद्दिणे कुणउ ॥ ३०१ ॥

यदि पुनः चाण्डालादीन् स्पृशेत् विरती कथमपि विरतो वा ।
तर्हि जलस्नान कृत्वा उपवासं तद्दिने करोतु ॥

जलवदमंतेहि हवे ण्हाण तिविहं तु तत्थ जलण्हाणं ।
गिहिणो विरदाणं पुण वदमंतेहिं पुणो कहियं ॥ ३०२ ॥

जलव्रतमन्त्रैः भवेत् स्नान त्रिविधं तु तत्र जलस्नानम् ।
गृहिणो विरतानां पुनः व्रतमन्त्राभ्यां पुनः कथितम् ॥

स्तेनीनां समाप्तम्—इति श्रमणीनां समाप्तम् ।

---

१ अन्ता प्रायश्चित्त स-ग-पुस्तके ।

एकस्य वस्त्रयुगलस्य एकस्या गौणिकायाः एककथायाः ।
प्रासुकजलेन प्रक्षालने एको व्युत्सर्गः ॥

अप्पासुगजलपक्खालणम्मि एगो हवेइ उववासो ।
पत्तादीणं पक्खालणे वि णादूण दायव्वं ॥ २९४ ॥

अप्रासुकजलप्रक्षालने एको भवति उपवासः ।
पात्रादीना प्रक्षालनेऽपि ज्ञात्वा दातव्यम् ॥

पहरेणेक्केणखया सिपिजंती जलेण पहरेणं ।
अवरेगेणंतिम्मं इमट्टिया जा जिणायदणे ॥ २९५ ॥

.. .. ।
... . ॥

लावाविज्जइ जइ सा कुड्डादीएसु इट्टयाणं वा ।
वेण्णिसहस्सा तो से छट्ठाइं वेण्णि पडिकमणं ॥ २९६ ॥

लागयति यदि सा कुड्यादिकेषु इष्टकान् वा ।
द्विसहस्राणि पष्ठानि द्वे प्रतिक्रमणे ॥

एवं मट्टियजलपरिमाण णादूण थोवमिदरं वा ।
अण्णत्थ वि दायव्वं पायच्छित्तं जहाजोग्गं ॥ २९७ ॥

एवं मृत्तिकाजलपरिमाण ज्ञात्वा स्तोक इतरद्वा ।
अन्यत्रापि दातव्य प्रायश्चित्त यथायोग्यम् ॥

पुप्फवदी जदि विरदी जायदि तो कुणउ तिण्णि दिवसाणि ।
आयंबिलणिव्वियडीखमणाणं एक्कदरगं तु ॥ २९८ ॥

१ सन्मग च एग ठाण वा प ठान्तर स-ग-पुस्तके ।

तेणिह सव्वपयारेण जणमणोवज्जणं गिहत्थेण ॥
काऊण दोससुद्धी अणुट्ठियव्वा पयत्तेण ॥ ३१९ ॥
तेनेह सर्वप्रकारेण जनमनोवर्जनं गृहस्थेन ।
कृत्वा दोषशुद्धिः अनुष्ठातव्या प्रयत्नेन ॥

उरपरिसप्पाईणं घादे जादम्मि तिण्णि उववासा ।
णिद्दिट्ठा गिहिवग्गस्स छेदववहारकुसलेहिं ॥ ३२० ॥
उरःपरिसर्पादीनां घाते जाते त्रय उपवासाः ।
निर्दिष्टा गृहिवर्गस्य छेदव्यवहारकुशलैः ॥

वियलिंदियाण घादे काउस्सग्गा तदिंदियपमाणा ।
इह पुण काउस्सग्गो अट्ठसयउस्सासपरिमाणो ॥ ३२१ ॥
विकलेन्द्रियाणां घाते कायोत्सर्गाः तदिन्द्रियप्रमाणाः ।
इह पुनः कायोत्सर्गः अष्टशतोच्छ्वासपरिमाणः ।

विरदाणं पि महव्वयकयाइचारस्स एद्दहो चेव ।
काउस्सग्गो अण्णत्थ पुव्वभणिदो त्ति बिंति परे ॥ ३२२ ॥
विरतानामपि महाव्रतकृतातिचारस्य एतावानेव ।
कायोत्सर्गः अन्यत्र पूर्वभणित इति ब्रुवन्ति परे ॥

अण्णा वि अत्थि अणुगुणसिक्खावयदंसणाइचाराणं ।
गिहिणो सोही य तं पि य संखेवेणं पवक्खामि ॥ ३२३ ॥
अन्यापि अस्ति अणुगुणशिक्षाव्रतदर्शनातिचाराणां ।
गृहिणां शुद्धिश्च तामपि च संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि ॥

पंचतिचउव्विहाइं अणुगुणसिक्खावयाइं होंति तहिं ।
एक्केक्के अदिचारा पंचेव अदिक्कमादीया ॥ ३२४ ॥

जिनभवनाङ्गणदेशे गोमयगोमूत्रदुग्धदधिभिः।
घृतसहितैः कारापयित्वा सप्तमहामण्डलानि स्फुट ॥

तो तं मुंडियसीसं वइसारिय मंडलेसु छसु कमसो।
जलपंचदव्वघयदहिपयगंधजलाहि पुण्णेहिं ॥ ३१४ ॥

ततः त मुडितशीर्ष वेशयित्वा मडलेषु षट्सु क्रमशः।
जलपचद्रव्यघृतदधिपयोगन्धजलैः पूर्णे. ॥

वरवारएहिं समं अहिसिंचिय संघसंतिघोसेण।
पच्छा सत्तममंडलठियस्स से संघसमवाओ ॥ ३१५ ॥

वरवारिभि समं अभिषिच्य संघशान्तिघोषेण।
पश्चात् सप्तमण्डलस्थितस्य तस्य संघसमवायं ॥

जलपुप्फक्खयसेसादाणेहि परममंगलासीहिं।
अहिणंदियंगसोहिं देउ फुडं जिणवयसमेओ ॥ ३१६ ॥

जलपुष्पाक्षतशेषादानैः परममगलाशीभिः।
अभिनदिताङ्गशुद्धि ददातु स्फुट जिनव्रतसमेता ॥

तो णियभवणपइट्ठो जिणमहिमं संघभोयणं कुणऊ।
लोयाण चित्तगहणं च वत्थधणभोयणादीहिं ॥ ३१७ ॥

ततः निजभवनप्रविष्ट जिनमहिमा संघभोजनं करोतु।
लोकाना चित्तग्रहण च वस्त्रधनभोजनादिभिः ॥

पाओ लोओ चित्तं तस्स मणोचित्तगाहयं कम्मं।
लोयस्स जं तमेव हि पायच्छित्तं ति जिणवुत्तं ॥ ३१८ ॥

प्रायो लोको चित्त तस्य मनः चित्तग्राहकं कर्म।
लोकस्य यत्तदेव हि प्रायश्चित्तमिति जिनोक्तम् ॥

तेसिं महव्वयाणं [illegible] ।
काऊण [illegible] पयत्तेण ॥ ३१९ ॥
तेषां [illegible] ।
कृत्वा [illegible] नित्यानन्यः प्रयत्नेन ॥

उरपरिसप्पाईणं घादे जादम्मि तिण्णि उववासा ।
णिद्दिट्ठा गिहियस्स छेददयालुकुसलेहिं ॥ ३२० ॥
उरःपरिसर्पादीनां घाते जाते त्रय उपवासाः ।
निर्दिष्टा गृहिणोऽस्य छेददयालुकुशलैः ॥

वियलिंदियाण घादे काउस्सग्गा तदिंदियपमाणा ।
इह पुण काउस्सग्गो अट्ठसयउस्सासपरिमाणो ॥ ३२१ ॥
विकलेन्द्रियाणां घाते कायोत्सर्गा तदिन्द्रियप्रमाणा ।
इह पुनः कायोत्सर्गः अष्टशतोच्छ्वासपरिमाणः ।

विरदाणं पि महव्वयकयाइचारस्स एद्दहो चेव ।
काउस्सग्गो अण्णत्थ पुव्वभणिदो त्ति विंति परे ॥ ३२२ ॥
विरतानामपि महाव्रतकृतातिचारणा एतावानेव ।
कायोत्सर्गः अन्यत्र पूर्वभणित इति ब्रुवन्ति परे ॥

अण्णा वि अत्थि अणुगुणसिक्खावयदंसणाइचाराणं ।
गिहिणो सोही य तं पि य संखेवेण पवक्खामि ॥ ३२३ ॥
अन्यापि अस्ति अणुगुणशिक्षाव्रतदर्शनातिचाराणां ।
गृहिणः शुद्धिश्च तामपि च संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि ॥

पंचतिचउव्विहाइं अणुगुणसिक्खावयाइं होंति तहिं ।
एक्केके अदिचारा पंचेव अदिक्कमादीया ॥ ३२४ ॥